परमानन्द संदेश

सचित्र आध्यात्मिक, धार्मिक मासिक

वर्ष १ अङ्क ५
फाल्गुन २०१७
मार्च १९६१

संस्थापक
सद्गुरु बाबा शारदाराम उदासीन मुनिजी महाराज

सम्मान्य संरक्षक
श्री महामण्डलेश्वर स्वामी गंगेश्वरानन्दजी महाराज

संचालक
श्री अजित मेहता बी० ई० (सिविल)

प्रधान संपादक
आचार्य भद्रसेन वैद्य

सम्पादक मण्डल
पं० सरयू प्रसाद शास्त्री 'द्विजेन्द्र'
श्री रमेशचन्द्र सिंह सेंगर
श्रीमती अनुसूया देवी
श्री गोविन्दराव जाना

यदानाहं तदा मोक्षो,
यदाहं बन्धनं तदा।
॥अष्टावक्र गीता ९-४ ॥

जब मैं नहीं, ऐसा भाव होता है तब मोक्ष है और जब मैं हूँ, ऐसा भाव होता है तब बन्धन जानना चाहिए।

कार्यालय
शारदा प्रतिष्ठान
सी० के० १५/५१ सुड़िया, बुलानाला
वाराणसी—१

मूल्य—
एक प्रतिका ४२ नये पैसे
वार्षिक पाँच रुपये
विदेशमें सात रुपये पचास नये पैसे

जीव-राम-ब्रह्म एक है।

बाबा शारदाराम कृत श्री निर्गुण महारामायण से उधृत

राम रमा सब घट मँह भाई। आत्मारूप सो जीव कहाई॥
सब उर बसै राम सुखदाई। ईश्वर अंश से जीव कहाई॥
सो ईश्वर जब जीवहिं प्रेरहि। तब मात्र लोक तन धारहि॥
कर्म विवश जीव नर तन पाई। ऊँच नीच बहु योनि कहाई॥
जीव का पिता ब्रह्म है सोई। राम पिता दशरथ जो होई॥
दशरथ दशदिश राजा जोई। निज अनुभव से ब्रह्म है सोई॥
सोई दशरथ सुत राम कहाई। ब्रह्म अंश जीव राम भये भाई॥
ब्रह्म यह सारा खेल रचाई। कहुँ राम कहुँ जीव कहाई॥
ज्यों स्वांगी नाना स्वांग बनाई। ब्रह्म रचना यों आप सुहाई॥
निर्गुण ब्रह्म सत्यस्वरूपी भाई। जीव राम तिसका अंश कहाई॥
राम दशरथ का कहैं सब पूता। जीव ब्रह्म का अंश अवधूता॥
ज्यों जलमें बुन्द-बुन्दमें जल ही। जल का द्वैत कोऊ ना धरही॥
खारा मीठा तात अरु शीतल। जल है एक भेद अस कीतल॥
यौंही जीव ब्रह्म लख भाई। ब्रह्म एक भिन्न नाम कहाई॥
सुवर्ण भाव सुजन लख लीजै। भूषण अनेक धातु एक कहीजै॥
'शारदाराम' राम जीव होई। इसमें भेद अहै ना कोई॥
राम को ब्रह्म मानत सब कोई। जीव ब्रह्म में भेद न होई॥
पूर्ण ज्ञान उदित हो जब ही। सर्वव्यापी राम जीव भया तबही॥

ब्रह्म जीव सब एक है, ज्यों घट मठ आकाश।
ब्रह्म ही सर्वव्याप रहा, ज्यों सूरज परकाश॥

जयजय सद्गुरु शारदाराम
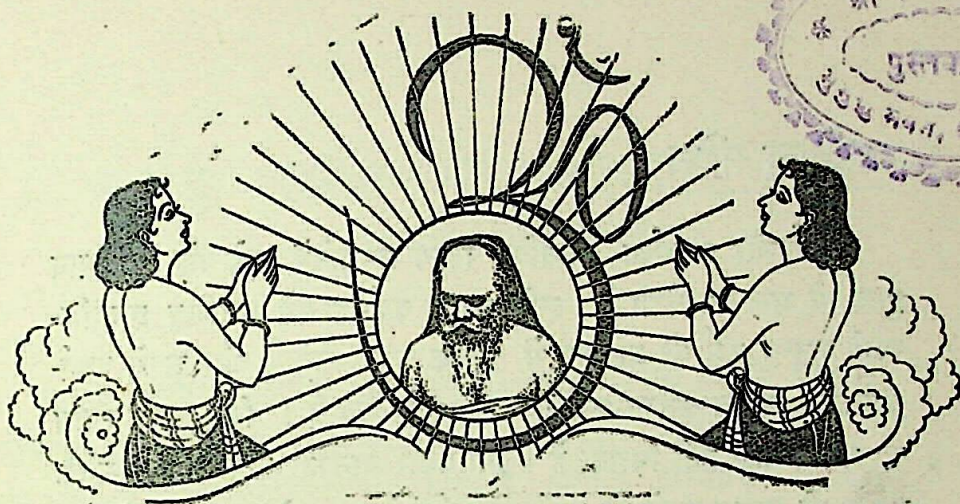
परमानन्द संदेश

दुख खण्डन परमानन्द मण्डन, है इस पत्र का भाव।
पढ़ै सुनै अमलो बने, सो लख पावै प्रभाव॥

वर्ष १ अङ्क ५	वाराणसी फाल्गुन संवत् २०१७ शक १८८२	मूल्य—४२ नये पैसे वार्षिक—५) रुपये

श्रीराम स्तवन

कामरूपाय रामाय नमो मायामयाय च॥

नमो वेदादिरूपाय ॐकाराय नमो नमः। रमाधाराय रामाय श्रीरामायात्ममूर्तये॥

जानकीदेहभूपाय रक्षोघ्नाय शुभाङ्गिने। भद्राय रघुवीराय दशास्यांतकरूपिणे॥

रामभद्र महेष्वास रघुवीर नृपोत्तम। भो दशास्यान्तकास्माकं रक्षां देहि श्रियं च ते॥

कामरूपधारी तथा मायामय स्वरूप ग्रहण करनेवाले श्रीरामको नमस्कार है। वेदके आदि कारण ॐकार स्वरूप श्रीरामको नमस्कार है। रमा श्री सीताजी को धारण करने वाले अथवा रमणीय अधरों वाले, आत्मरूप, नयनाभिराम श्रीराम को नमस्कार है। श्रीजानकीजी का शरीर ही जिनका आभूषण है, जो राक्षसोंके संहारक तथा कल्याणमय विग्रहवाले हैं तथा जो दशमुख रावणका अन्त करनेके लिये यम-राजस्वरूप हैं, उन मंगलमय रघुवीरको नमस्कार है। हे रामभद्र! हे महाधनुर्धर! हे रघुवीर! हे नृप श्रेष्ठ! हे दशवदन विनाशक! हमारी रक्षा कीजिये तथा हमें ऐसा श्री-ऐश्वर्य—सम्पदा दीजिये, जिसका सम्बन्ध आपसे हो।

उपनिषद् संदेश

कर्म और अकर्मका वास्तविक रहस्य समझनेमें बड़े-बड़े बुद्धिमान पुरुष भी भूल कर बैठते हैं। इसी कारण कर्म-रहस्यसे अनभिज्ञ ज्ञानाभिमानी मनुष्य कर्म को ब्रह्मज्ञान में बाधक समझ लेते हैं और अपने वर्णाश्रमोचित अवश्य कर्तव्य कर्मों का त्याग कर देते हैं। किन्तु उन्हें त्याग का यथार्थ फल नहीं मिलता है। इसी प्रकार ज्ञानका तत्त्व न समझनेके कारण भी मनुष्य अपने को ज्ञानी तथा संसारसे ऊपर उठे हुए मान लेते हैं। अतः वे अपने को पाप-पुण्य से अलिप्त मानकर मनमाने अकार्यमें प्रवृत्त हो जाते हैं अथवा आलस्य निद्रा तथा प्रमादमें अपने दुर्लभ मानव जीवन के अमूल्य समय को नष्ट कर देते हैं। उपरोक्त अनर्थों से बचनेका एकमात्र उपाय कर्म और ज्ञानके रहस्यको साथ-साथ समझकर उनका यथायोग्य अनुष्ठान करना ही है। जो मनुष्य इन दोनोंके तत्त्वको एक ही साथ भलीभांति समझ लेना है, वह अपने वर्णाश्रम और परिस्थितिके अनुरूप शास्त्रविहित कर्मोंका स्वरूपतः त्याग नहीं करता, बल्कि उनमें कर्तापनके अभिमानसे तथा राग-द्वेष और फल कामनासे रहित होकर उनका यथायोग्य आचरण करता है। इससे उसकी जीवन यात्रा भी सुखपूर्वक चलती है और इस भावसे कर्मानुष्ठान करनेके फलस्वरूप उसका अन्तकरण समस्त दुर्गुणों एवं विकारोंसे रहित होकर अत्यन्त निर्मल हो जाता है। भगवत कृपासे वह मृत्युमय संसारसे सहज ही तर जाता है और ज्योतिस्वरूप परब्रह्मका साक्षात् करता है।

जो पुरुष विनाशशील स्त्री, पुत्र, धन, मान, कीर्ति, अधिकार आदि इस लोक और परलोककी भोग सामग्रियोंमें आसक्त होकर उन्हीं को सुखका हेतु समझते हैं तथा उन्हींके अर्जन-सेवनमें सदा संलग्न रहते हैं, वे भोगासक्त मनुष्य अपनी उपासनाके फलस्वरूप विभिन्न भोग योनियोंको प्राप्त होते हैं। यही उनका अज्ञानरूप घोर अन्धकारमें प्रवेश करना है।

ईशावास्योपनिषद् ११।१२॥

मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान रामका जन्मोत्सव

ले०--श्री एम० जी० दीक्षित

मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान श्रीराम भारतवासियोंकी कल्पना में, जाने या बिना जाने, सबके ध्येय, ज्ञेय और उपास्य हैं—सभी उनकी खोजमें अनवरत प्रयत्न करते रहते हैं, उनकी सदैव आराधना करते रहते हैं, सदैव उनकी सेवा पूजा में लगे रहते हैं। उनके सभी चरित्र परम-आदर्श एवं उज्ज्वल हैं। क्या वेद, क्या उपनिषद्, क्या पुराण, क्या इतिहास, सभी उनकी महिमाका बखान करते हैं। इस कठोर कलिकालमें भवसागरसे पार उतरनेका एकमात्र उपाय श्रीरामके गुणों और उनके पवित्र नामका सतत स्मरण ही कहा गया है।

श्रीरामचरित्रका वर्णन सर्वप्रथम वेदों और उपनिषदोंमें आया है। उपनिषदोंके बाद ही आता है विश्वका सर्वप्रथम महाकाव्य बाल्मीकि रामायण। विश्वके आदि कवि महाज्ञानी महामुनि बाल्मीकिने श्रीरामके पावन चरित्रको ही अपनी लेखनीका विषय बनाया, इससे अधिक प्रमाण श्रीरामके चरित्रकी उज्ज्वलताका अन्यत्र नहीं मिल सकता। कथा आती है कि जब महर्षि बाल्मीकि महाकाव्यकी रचना करने बैठे तब उपयुक्त विषयके चयनके लिए उन्होंने देवर्षि नारदसे सहायता प्राप्त की। नारदजी त्रैलोक्यमें घूमते थे। देवताओं, मानवों, राक्षसों और दैत्योंसे उनका गहरा परिचय था। सभी के गुणों और अवगुणोंकी उन्हें पहचान थी। अतएव बाल्मीकिजीने उनसे परामर्श किया कि मेरे महाकाव्यमें मुख्य पात्रके लिए आप किसका नाम प्रस्तावित करते हैं। कौन है ऐसा व्यक्ति जिसका चरित्र उत्तम एवं अनुकरणीय हो तथा जिसे मैं नायक बना सकूँ। नारदजीने असंदिग्ध स्वरसे सलाह दी कि त्रैलोक्यमें श्रीराम ही ऐसे व्यक्ति हैं जिनका चरित्र सर्वोत्तम है और जो इस गौरवको पानेके उपयुक्त पात्र हैं। महामुनि बाल्मीकि और देवर्षिकी वार्ताको बाल्मीकि रामायणमें निम्नांकित श्लोक द्वारा व्यक्त किया गया है—

चरित्रेण च को युक्तः.........।

इक्ष्वाकुवंशप्रभवो रामो नाम जनैः श्रुतः ॥

(१।१।३–८)

केवल नारदजी ही नहीं वरन् महर्षि वेदव्यास, जो पुराणोंके जन्मदाता और स्वयं श्रीभगवान्‌के ही रूप कहे गये हैं, भगवान् श्रीरामके विषयमें अपने मनके भाव अपने ग्रंथ महाभारतमें इस प्रकार व्यक्त करते हैं—

"सर्वभूतमनःकांतो रामो राज्यमकारयत।

रामो रामो राम इति प्रजानामभवत्कथा ॥

रामाद्रामं जगदभूद्रामे राज्यं प्रशासति।

(महाभारत, द्रोणपर्व ५९।२२-२३)

"समस्त प्राणियोंके मनको प्रिय लगने वाले श्रीरामचन्द्र जब राज्य करने लगे, तब समस्त प्रजामें राम, राम, केवल राम और रामकी ही चर्चा होती थी। रामके राज्यकाल में सम्पूर्ण जगत अभिरामसे अभिराम परम सुन्दर सुखमय हो गया।"

समस्त पुराणोंका सार श्रीमद्भागवतको कहा गया है। व्यासजी श्रीमद्भागवतमें लिखते हैं—

यस्यामलं नृपसदः सु यशोधुनापि,
गायन्त्यघघ्न पृयो दिगिभेन्द्रपट्टम्।
तं नाकपालवसुपालकिरीटजुष्ट—
पादाम्बुजं रघुपतिम् शरणं प्रपद्ये॥
(श्रीमद्भागवत ९।११।२१)।

'श्रीरामका उज्ज्वल और निर्मल यश समस्त पापोंको नाशने वाला है। वह इतनी दूर-दूर तक विस्तृत हो चुका है कि दिग्गजोंके श्यामल शरीर भी उसकी प्रभासे आलोकित हो उठे हैं। बड़े-बड़े ज्ञानी ध्यानी ऋषि भी आज बड़ी-बड़ी राजसभाओंमें उसका गायन करते हैं। स्वर्गके देवता और पृथ्वीके समस्त नरेश अपने सुन्दर मुकुटोंसे उनके चरण-कमलोंकी सेवा करते हैं। मैं उन्हीं रघुकुल-सूर्य श्रीरामचन्द्रकी शरण हूँ।

एक अत्यन्त प्राचीन एवं प्रसिद्ध श्लोक में श्रीरामके पावन यशका वर्णन निम्नांकित रूपसे किया गया है—

महाराज श्रीमन् जगति यशसा ते धवलिते,
पयः पारावरं परमपुरुषोंयं मृगयते।
कपर्दी कैलास कुलिशदगभौमं करिवरं,
कलानाथ राहुकमलभवनो हंसमधुना॥

"महाराज श्रीरामचन्द्र! आप के अत्यन्त उज्ज्वल धवल यशसे समस्त जग दुग्धफेन सदृश श्वेत हो गया है। श्वेतरंगकी सारी वस्तुएँ इस श्वेतरंगमें एकाकार होकर खो गई हैं। नारायण अपने श्वेत, रंगके क्षीरसागरकी खोजमें लगे हैं, महादेवजी कैलासको, इन्द्र ऐरावतकी तो राहु ग्रसनेके लिए श्वेत रंग वाले चन्द्रमाको खोज रहा है। कमलयोनि ब्रह्माका श्वेत हंस भी इस श्वेतरंगके अपार पारावारमें खो गया है, जिसे वह ढूँढ़ रहे हैं।

यह तो हुई संस्कृत साहित्यमें श्रीरामके चरित्रकी प्रशस्ति। अब लीजिए हिन्दी साहित्य को। श्रीरामचरित्रके अनन्य गायक गोस्वामी तुलसीदासजी गंगाकी धवल लहरोंसे श्रीरामके शुभ्र चरित्रकी तुलना करते हुए अपने प्रख्यात काव्यग्रंथ 'विनयपत्रिका' में लिखते हैं—

सोहत ससि धवल धार सुधा-सलिल भरिति।
विमलतर तरंग लसत रघवर के से चरित॥
(विनय पत्रिका १९)

प्रजावत्सल श्रीरामका जीवन और प्रजाके साथ स्नेह उनके आनन्दमय जीवनका सर्वाधिक मधुर और सुखदायक प्रसंग है। श्रीरामचरित्र पवित्र गंगाकी धाराके समान ही उज्ज्वल और निर्मल है। वह सभीको समदृष्टिसे देखते थे, सबसे मिलते थे सबको मधुर वाणीसे संतुष्ट करते थे। चित्रकूट पर स्वभावसे ही क्रूर भील को ले उनके अनुचर बन कर उनको सेवामें

प्रश्नोत्तर

लखनऊसे सन्तोषकुमारी जीने पत्र द्वारा बाबा शारदारामजीसे प्रश्न किया है। उसका उत्तर दयासिन्धु बाबाजीके शब्दोंमें ही पाठकोंके ज्ञान-वर्धनके लिए प्रकाशित किया जा रहा है। भविष्यमें भी हम जिज्ञासुओं के प्रश्नोत्तरका आदर करेंगे। —सम्पादक

बाबाजीके नाम पत्रमें अपने मनकी शंका प्रकट करते हुए सन्तोष कुमारीजी लिखती हैं—

'आपने पिछली चिट्ठीमें लिखा था कि हमें महात्मा गांधीकी तरह शुद्ध सात्विक और सादा जीवन बिताना चाहिये। पर एक बात मुझे आजतक समझमें नहीं आई। भगवानने गीताके १८ वें अध्यायमें अर्जुनसे कहा है—'जो कुछ इस दुनियाँमें होता है, सब मैं करता हूं। सब कर्म मेरे कहे अनुसार होते हैं। कर्ता भर्ता, धर्ता मैं हूँ।'

जब कोई आदमी किसीको दुख देता है अथवा बुरा काम करता है तब लोग उसे कहते हैं—'तुझे पाप लगेगा क्योंकि तुमने बुरा काम किया है।' यदि गीताकी बात सत्य है तो उसके अनुसार सब काम भगवान करता है तब यह बुरा काम भी तो भगवानने ही किया। फिर उस आदमीको पाप कैसे लगेगा। आप कहेंगे कि जान-बूझकर बुरे काम करनेसे पाप लगता है और सजा मिलती है। अक्ल भग-वानने दी है इसलिये कि क्या अच्छा है—क्या

संलग्न रहते थे तो बनमें रहने वाले विरक्त मुनि भी उनके सान्निध्यसे स्नेहके वशीभूत हो जाते थे। केवल मनुष्य ही नहीं पशु और वे भी वानर, उनके सद्भावके कारण ही उनके मित्र बन गये थे। १४ वर्ष बनमें व्यतीत कर दुष्टोंके नाशके पश्चात् उन्होंने रामराज्यकी स्था-पनाकी। प्रजाकी भावनाको वह पहले स्थान देते थे। एक साधारण धोबीके कारण उन्होंने निर्दोष सीताको त्याग दिया था। प्रजाके कष्टको सुन कर वह अधीर हो उठते थे। मथुराकी प्रजा की पुकार पर उन्होंने शत्रुघ्नको भेज कर लव-णासुरका बध कराया था।

उन्हीं दशरथनंदन श्रीराम और उनके रामराज्यकी यादमें, प्रजाके सदाचार, सद्व्यवहार सुख-समृद्धि और शांतिके युगकी यादमें आर्यवीर श्रीरामके समयसे आज तक भारतमें श्रीराम-नवमीका शुभ दिन हम मनाते हैं। उनके जन्मको अनगिन वर्ष बीत गये, मगर वह भारतीय जनताकी स्मृतिमें सदैव अमर हैं। उनका चरित्र सदैव याद रहेगा और प्रजाके प्यारे रामकी पवित्र जन्मतिथि भारतीयों द्वारा पवित्र भावनासे मनाई जाती रहेगी।

बुरा है सोच कर कार्य किया जाय। पर भगवान भी तो छलका सहारा लेते हैं। उन्होंने बालिको पेड़के पीछेसे मारा था। क्या भगवानने यह न्याय किया। यदि यही काम इन्सान करता तो उसे सजा मिलती, पर भगवानके इस कार्य को हमलोग उचित कहकर स्वीकार करते हैं। भगवान तो सबके पिता हैं उनके लिये सब बराबर हैं फिर वे ऐसा क्यों करते हैं? भगवान अपने भक्तोंकी इतनी कठिन परीक्षा क्यों लेते हैं और उनसे ही छल करते हैं। आखिर ऐसा क्यों होता है? आप कृपाकर मुझे समझा दीजिये?'

उत्तर देते हुए सद्गुरु बाबाजी ने अपने पत्रमें लिखा है—

'शंका समाधान प्रत्यक्ष उत्तर-प्रश्नमें ठीक हो जाता है। जो आपने गीताका प्रमाण दिया है, शास्त्रोंकी गति अति गूढ़ है। उसका निर्णय करनेके वास्ते शुद्ध बुद्धिकी जरूरत है। कहीं तो भगवान कहते हैं कि कर्ता-धर्ता सब कुछ मैं हूँ और कहीं भगवान यह भी कहते हैं कि भक्ति, धर्म और सदाचार से रहित पुरुष पापाचारी, मूढ़ और अधम हैं, वही असुर लोग हैं। इससे यही सिद्ध होता है कि शास्त्रका रहस्य गहन है, गूढ़ है।

अब आपको थोड़ेमें समझाते हैं—जो ब्रह्मज्ञानी लोग हैं, उनकी दृष्टिमें 'सर्वं खलु इदं ब्रह्म' सब ब्रह्ममें ब्रह्म ही भरा हुआ है। पर जो कर्मी लोग हैं वे भेदवादी हैं। अहमता, ममतासे भरे हैं। इन्हींके लिये शास्त्रकी मर्यादा और लोककी मर्यादा बतलाया गया है। उपासक लोग जो हैं उनके लिये उपास्य-उपासकका भेद है। जीव उपासक है और ब्रह्म उपास्य है। जीव ब्रह्मसे मिलनेके लिये ही नित्य शुद्ध उपाय करता रहता है।

भगवानने बालिको जो छलसे मारा तो वह भगवान सर्व शक्तिमान हैं। क्योंकि उस समय भगवान स्वयं बालिसे कहते हैं—'अचल करहु तन राखौं प्राना' इस चौपाईसे यह सिद्ध होता है कि भगवानमें मारने और जिलानेकी दोनों शक्तियाँ हैं इसलिये भगवान छली नहीं हैं। छली जीव ही होता है।

दूसरा अर्थ यह है कि ताड़ नाम तमोगुण का है। तमोगुणके प्रभावसे प्रभु आड़में पड़े हैं। बालि और भगवानके बीच तमोगुणका ओट होनेके कारण ही पत्नीके समझानेपर भी बालि भगवानको न पहचान सका। ताड़ (तमोगुण) के ओटसे ही प्रभु सब जीवोंको हनन रूपी कर्मफल देते हैं। ऐसा गूढ़ विचार करनेसे प्रभु आड़में रहते हुए भी सबके शुभाशुभ कर्मों को देखते हैं और फल देते हैं। धर्मशास्त्र और वेद-पुराण जीवके सुख शान्तिके लिये गुण-अवगुण और अच्छे-बुरेकी मर्यादा स्थापित करते हैं। शुभ कर्मोंके द्वारा जब जीव और ब्रह्म के बीचसे तमोगुणका पर्दा हट जाता है तब ब्रह्मज्ञान होता है।
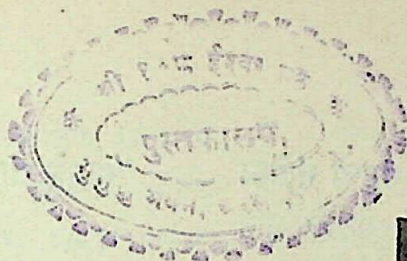
सद्गुरु बाबा शारदारामजी उदासीन मुनिके अमृत तुल्य उपदेश
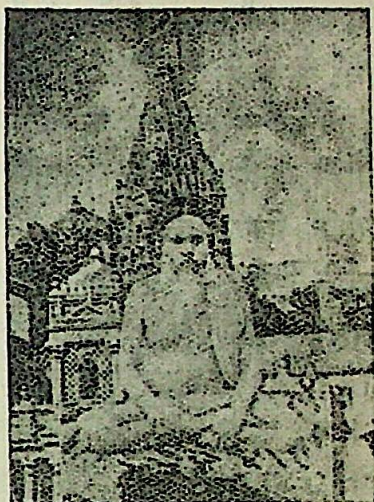
सन्तके श्रीमुखसे निकली हुई वाणी मन्त्रके समान प्रभावशाली होती है। उनके शब्दों और वाक्योंमें संशोधनसे प्रवचनका मौलिक रस जाता रहता है। पाठकोंके विशेष आग्रह पर बाबाजीके प्रत्येक प्रवचन उन्हींके शब्दोंमें यथा सम्भव ज्यों-का-त्यों छापनेकी चेष्टा की जाती है। विद्वान पाठकोंको छिद्रान्वेषण त्याग गुणग्राहक बनना चाहिए। क्योंकि सम्पूर्ण बन्धनोंसे मुक्त सन्तकी वाणी और भाषाको व्याकरणकी परिधि में नहीं बाँधा जा सकता। यह ज्ञातव्य है कि बाबाजीकी स्कूलीशिक्षा नानक, कबीर आदि सन्तोंके समान नाममात्र ही है।

—सम्पादक

"साधु कै संग सब कुल उधारै, साधसंग साजन मीत कुटुम्ब निसतारै ॥
साधु कै संग सो धन पावै, जिस धन ते सब को बरसावै ॥
साधु संग धरमराज करे सेवा, साधु के संग शोभा सुर देवा ॥
साधु कै संग पाप पलायन, साधु संग अमृत गुन गायन ॥
साधु कै संग सरब थान गम, नानक साधु कै संग सफल जन्म ॥"

बानी गुरु नानक देव (सुखमनी)

भक्तों! आज हम आपको संतोंके, साधुओंके संग करनेका महात्म्य सुनाते हैं। गुरु नानक देवजी अपनी बानी में कहते हैं—साधुके संग सब कुल उद्धारे—किसी

भी कुटुम्बका अगर कोई एक मनुष्य संतोंका संग करता है, साधुओंके संगमें बैठकर ज्ञान चर्चा करता है, मुक्तिके मार्गको ज्ञात करता है, तो वह मनुष्य धीरे-धीरे अपने पूरे कुटुम्ब को भी संतोके दर्शनके लिए, संतोंकी संगत करनेके लिए, संतों द्वारा उपदेशामृत पान करनेके लिए, उन्हें संतोंके पास ले आता है। अपने पड़ोसी, मित्र, रिश्तेदार इत्यादिको सतों की संगतमें लगा कर उनका कल्याण करवाता है। इस प्रकार वह अपने पूर्वजोंका तथा अपने कुल का भी उद्धार करता है। गुरु नानक जी कहते हैं—

'सिमरों सिमर-सिमर सुख पावो,
कलि कलेश तन माहिं मिटावो।'

परमात्मा ज्योति स्वरूप है, उसको हमेशा याद रखना चाहिए, उसका हमेशा ध्यान करना चाहिए। जप तीन प्रकारसे किया जा सकता है। एक तो जो हम अपने मुखसे प्रभुका जप करते हैं, प्रभुका नाम लेते हैं, जिसको अन्य मनुष्य भी श्रवण कर सकता है। दूसरा प्रकार ऐसा है कि जिसमें सिर्फ होठोंको हिलाया जाता है, अन्य मनुष्य श्रवण नहीं कर सकता; परन्तु इतना जान सकता है कि वह मनुष्य कुछ जप कर रहा है, नाम जप रहा है। तीसरा प्रकार है—केवल मनमें ही प्रभुका ध्यान करना। इसमें अन्य मनुष्यको बिलकुल पता नहीं चलता। तो इन तीन प्रकारों में से किसी भी तरह से प्रभुका ध्यान करना चाहिए और उसके द्वारा मनके क्लेशको तनसे दूर करना चाहिये।

"साधुके संग सो धन पावै...।"

जब तक मनकी वृत्ति मायाकी ओर है तब तक मनुष्यको शांति नहीं मिलती, मनुष्य की तृष्णा बढ़ती ही जाती है। यह तृष्णा कभी भी पूर्ण नहीं होती। मनुष्य अगर एक घर अपना बना ले तो फिर बँगला बनानेको सोचता है और महलों के सपने देखता है। अगर मनुष्य स्वर्ग-पातालका राज्य भी पा लेता है तो भी उसकी तृष्णा पूर्ण नहीं होती। पूर्णता केवल एक ब्रह्मज्ञानसे ही हो सकती है। ब्रह्मज्ञानी ब्रह्मज्ञानमें, प्रभु ध्यानमें स्वर्ग और पातालके सुखोंसे भी बढ़कर परमसुखका अनुभव करता है। संतोंके संगसे जो धन अर्थात् आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त होता है, उसे सज्जन पुरुष दूसरोंके कल्याणके लिए खर्च करते हैं। उसका लोगोंको उपदेश देते हैं और अपने भौतिक सम्पत्तिका भी उपयोग दूसरों के कल्याणके लिए ही करते हैं; क्योंकि जब वे संतोंके संगमें बैठते हैं तब सत्संगके प्रभावसे, संतोंके वचनोंके प्रभावसे मनकी मैल साफ हो जाती है। मनकी मैल निकल जानेसे मनमें दया उत्पन्न होती है, दयासे दानवृत्ति बढ़ती है, दानवृत्तिसे ही सज्जन लोग सबमें बाँट कर खाते है। ब्रह्मज्ञान प्राप्त करनेके लिए संतोंके पास ही जाना पड़ता है; क्योंकि ब्रह्मज्ञान केवल संतोंके पास ही मिलता है। धनी, अमीर या राजाके पास नहीं मिलता। सज्जन मनुष्य ब्रह्मज्ञानको प्राप्त कर लेता है, ज्ञान जब उसमें घर कर लेता है तब वह ज्ञान द्वारा दूसरोंका

कल्याण करता है, दूसरोंको उपदेश करता है। अगर किसीकी बुद्धि मलीन होती है तो ब्रह्म-ज्ञानी उसको बुद्धि शुद्ध करनेका मार्ग बतलाता है। अगर किसीमें क्रोध हो तो ब्रह्मज्ञानी उसे शांतिका उपदेश करेगा। क्योंकि शांति ही षट्‌रिपुओंको दूर भगाती है––

'गोधन, गजधन, बाजिधन, और रतनधन खान।
जब आवे संतोष धन सब धन धूर समान॥'

ब्रह्मज्ञानी अपने समाजको, अपने समाज के लोगोंको, अज्ञान रूपी अंधेरेसे निकालकर ज्ञान रूपी प्रकाशमें ले आता है। कुमार्गसे सुमार्ग पर आनेका उपदेश करता है। संसारमें सिर्फ ज्ञानी मनुष्यका ही यश होता है, सिर्फ ज्ञानीकी ही ख्याति होती है। अमीरकी नहीं होती, श्रीमंतकी नहीं होती। अमीर, श्रीमंत तो रावण भी था, कंस भी था लेकिन उनकी ख्याति नहीं हुई, उनका सुयश समाज नहीं गाता। यश गाया जाता है तुकाराम का, ज्ञानेश्वर का, कबीर जी का, विभीषण का। क्योंकि इनके पास आध्यात्मिक ज्ञानका अटूट भंडार था। राजा जनक भी बड़ा अमीर था, परन्तु उनके पास भौतिक धनके होते हुए भी आध्यात्मिक धन भी विशाल था जिससे उनका यश बहुत है।

प्रभुको विश्वके सब प्राणी प्रिय होते हैं परन्तु ब्रह्मज्ञानी भक्त प्रभुको अधिक प्रिय होते हैं। गीतामें भगवान् श्री कृष्ण कहते हैं। समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम्।

'मेरा सारे संसार पर एक सा प्यार है।' जिस प्रकार अगर किसीका एक कुपुत्र हो और एक सुपुत्र हो, तो वह अपने कुपुत्रको भी सुपुत्र बननेका मौका देगा, उसे उपदेश करके सुपुत्र बनानेकी कोशिश करेगा। गीतामें और एक स्थान पर कहते हैं—

अपिचेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवस्थितो हि सः।

"मनुष्य पापी होते हुए भी अगर मेरी शरण लेगा तो मेरा प्रिय बन जायेगा।"

भगवान किसीका धन नहीं देखते, केवल 'प्रेम' देखते हैं, केवल 'प्रेम' चाहते हैं। भग-वान कहते हैं कि मेरी भक्ति करने वाले सदा मेरे हृदयमें निवास करते हैं। परन्तु भगवान सर्वव्यापी होनेसे समस्त विश्वमें विद्यमान हैं। वे हर एकके हृदयमें निवास करते हैं, किन्तु हर एक प्राणी प्रभुको नहीं देख सकता। सूर्यके उदय होने पर तम का नाश होता है, चारों तरफ प्रकाश हो जाता है। सूर्यका प्रतिबिम्ब अगर हमें देखना हो तो उसे शुद्ध स्थिर पानीमें देख सकते हैं। उसी प्रकार केवल शुद्ध स्थिर मन वाले ही प्रभुको जान सकते हैं, अन्य नहीं।"

अगर जीवोंका कल्याण कर सकते हैं तो केवल ब्रह्मज्ञानी ही कर सकते हैं। राजा, अमीर आदि जीवका उद्धार नहीं कर सकते। राजाके प्रसन्न होने पर केवल इसी जन्ममें सुख मिलेगा, अमीर प्रसन्न होने पर धन देंगे, जो सिर्फ इहलोकमें ही काम आएगा। परन्तु ब्रह्म-ज्ञानी यदि प्रसन्न हो जाँय तो ऐसा ब्रह्मज्ञान

देगें जिससे मनुष्यका इहलोक और परलोक दोनों ही बन जाएगा और चौरासी लाख योनियोंसे छूटकर जीव मुक्त हो जाएगा। कहा भी गया है कि—

ब्रह्मज्ञानी सब सृष्टि का कर्ता।
ब्रह्मज्ञानी सजीवे नहीं मरता॥

ब्रह्मज्ञानी सदाके लिए अमर है, उसकी मृत्यु नहीं होती। अब यहाँ पर यह प्रश्न उठता है कि मरते सब है, शरीरका अग्नि संस्कार किया जाता है तो ब्रह्मज्ञानी क्यों नहीं मरते ? इसका उत्तर है कि शरीर यह एक वस्त्र है, जिस प्रकार मनुष्य पुराने वस्त्रको त्यागकर नये वस्त्रको धारण करता है। उसी प्रकार आत्मा भी पुरानी देह त्यागकर नई देह धारण करती है। ऐसा गीतामें कहा गया है।

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय,
नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्य-
न्यानि संयाति नवानि देही॥

शरीर जो है वह मायाका स्वरूप है, क्षणिक है, अस्थिर है। आत्मा शरीरकी अधिष्ठात्री है। शरीर ब्रह्मकी सतह पर खड़ा है। इस बातको समझ कर ज्ञानी ब्रह्मका चिंतन करके ब्रह्ममें लीन हो जाता है। इस प्रकार ब्रह्मज्ञानीका नाम इस विश्वमें विख्यात हो जाता है। भौतिक शरीरके न होने पर भी विश्व उनके नामको याद करता हुआ उनके दिए हुए उपदेशों पर चलता है। सिक्खोंके गुरुओंके दस अवतार हैं उनका नाम चलता आ रहा है, जैन मत वालों के गुरुओंका भी नाम चलता आ रहा है। इस प्रकार ब्रह्मज्ञानी अमर हैं।

आत्मा ब्रह्म का स्वरूप है, ऐसा गीतामें कहा गया है। सृष्टिकी जो बातें हैं, वे सब गीतामें विस्तारपूर्वक कही गई हैं। हम गीताको सारी सृष्टिका अधिष्ठान कह सकते हैं। देखा जाय तो जिस प्रकार एक घड़ा है उसका प्रत्येक अंश मिट्टीका बना है। उसमें कहीं भी मिट्टीके सिवा कोई दूसरी वस्तु नजर नहीं आएगी। उसी प्रकार इस विश्वके प्रत्येक स्थानमें ब्रह्म भरा हुआ है, ब्रह्मके सिवाय और कुछ नहीं है। गीताकी इसी बातको कई अलग-अलग धर्मग्रंथोंमें बताया गया है। 'नदियाँ एक घाट बहुतेरे' जिस प्रकार गंगा नदी तो एक है, पर उसमें स्नान करनेके लिये बने हुए घाट कई हैं, लेकिन जल अलग नहीं। अंग्रेजी, पंजाबी, बंगाली, फारसी इत्यादि वाणीमें भी उसी एक ब्रह्मका प्रतिबिम्ब दिखायी देता है। ब्रह्मका प्रतिबिम्ब महात्मा, साधुजन अपनी वाणी द्वारा दिखाते हैं, अपने वचनों द्वारा बताते हैं।"

'साध संग धरमराज करे सेवा...॥

साधुजनोंका संग करनेसे, सत्संग करनेसे धर्मराज भी अपने कहे अनुसार चलता है। वह साधु समाजमें बैठने वालोंकी सेवा करता है। गुरुनानकजी अपनी वाणीमें कहते हैं—

"धन धन राजा जनक हैं,
जिन सिमरन किया विवेक।
एक घड़ीके सिमरने,
पापी तरे अनेक॥"

राजा जनकके बारेमें एक कहानी है कि जब राजा जनकको मनुष्य लोकसे स्वर्ग लोकमें ले जाया जा रहा था, तब रास्तेमें नरक लोक आ गया तो वायुका झोंका राजा जनकके शरीरको स्पर्श करके जब नरक कुण्डमें गया तो सारा नरक बिलकुल शान्त हो गया। तब सब नरकवासी स्वर्ग सुखका अनुभव करने लगे। तन, मन सब शान्त हो गया। सब नरक वासियोंने मिलकर राजा जनकसे प्रार्थना की कि आप यहीं पर निवास करें, आपके यहाँ रहनेसे हमें वैकुण्ठका सुख प्राप्त होता है, हमें शीतल, शुद्ध वायुकी प्राप्ति होती है। तब राजा जनकने धर्मराजसे कहा कि मैं यहीं रहूँगा, क्योंकि मेरे यहाँ रहनेसे सबको वैकुण्ठ सुख प्राप्त होता है। या तो ये सारा नरक खाली करो तो मैं आगे चलूँगा। तब धर्मराजने प्रार्थना की— हे जनकजी, इससे नियम भंग होता है। आप ऐसा न कीजिये। राजा जनक नहीं माने। तब धर्मराजने विष्णु भगवानके पास जाकर सारी बातें कही। विष्णु भगवानने धर्मराज ने कहा— "जैसा राजा जनक कहते हैं उसी प्रकार करो, उनको नाराज नहीं करना।" तब राजा जनकके पास आकर धर्मराजने हाथ जोड़ा और उनकी आज्ञाके अनुसार सारा नरक खाली कर दिया। उन सबको फिरसे मनुष्य योनिमें जन्म मिला और सबने मनुष्य योनिमें राजा जनकके दर्शनके प्रभावसे भक्ति द्वारा पुण्य करके स्वर्ग प्राप्त किया। कहनेका तात्पर्य यह है कि साधुजनोंका संग करनेसे सत्संग करनेसे भक्तजनोंका कल्याण होता है और उनसे स्वयं धर्मराज भी डरता है। संतोंका संग करनेसे, सन्तोंके समाजमें बैठनेसे इन्द्र पदकी प्राप्ति होती है। इस विषयमें राजा नहुषका दृष्टान्त बड़ा अच्छा है।

"साधु संग अमृत गुण गायन" से मतलब है कि साधुकी संगतसे, सत्संगसे लोग अमृतके समान मीठे नामके गुण गाते हैं। यह नाम अमर है, जीवात्माको मुक्त कर देता है। जीवात्माका कल्याण धन नहीं कर सकता, केवल उस प्रभुका नाम ही कल्याण कर सकता है। "जीवात्माका नाश नहीं हो सकता, कोई सुखा नहीं सकता, कोई जला नहीं सकता। गीला नहीं कर सकता और न कोई काट सकता है। वह सदा अलिप्त है।" ऐसा भगवान् गीतामें कहते हैं।

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः ॥

जो नामका ध्यान करेगा, प्रभु चिंतन करेगा, प्रभुकी शरण लेगा, वह मुक्त हो जायेगा। जब तक ब्रह्मको प्राप्त नहीं कर लेते तब तक कई शरीरमें (चौरासी लाख योनियोंमें) भ्रमण करना पड़ेगा। जब तक जीव प्रभु भक्तिमें निरत नहीं होगा, तब तक उसका कल्याण नहीं हो सकता, जो नाम जपेगा, वह अमर हो जायेगा। जैसे नदी समुद्रमें मिलकर अपने अस्तित्वको मिटा देती है, समुद्र रूप हो जाती है। उसी प्रकार यह जीवात्मा जब ब्रह्ममें मिल जायेगा तब आवागमनसे छूट जायेगा। गीतामें श्री कृष्ण भगवान् कहते हैं—"आत्मा प्राणीमें चेतन शक्ति है। ब्रह्मज्ञानीकी आत्मा

विशाल होती है। आकाश हर जगह पर व्यापक है। घरके अन्दर भी आकाश भरा हुआ है। घड़ेके अन्दर भी आकाश भरा हुआ है। आकाशवत् ब्रह्मज्ञानीकी आत्मा व्यापक होती है।"

यथा सर्वगतं सौक्ष्म्यादाकाशं नोपलिप्यते।
सर्वत्रावस्थितो देहे तथात्मा नोपलिप्यते॥

प्रभुका जो शुद्ध मनसे भजन करता है, ध्यान करता है, चिंतन करता है, निःस्वार्थ भक्ति करता है वह मुक्त हो जाता है, जो स्वार्थ से कीर्तन करता है वह भी मुक्त हो जाता है; परन्तु उसकी मुक्ति देरसे होती है। एक स्थान पर कहा गया गया है कि—

एक घड़ी आधी घड़ी, आधो में पुन आध।
'तुलसी' संगत साधू की, हरे कोटि अपराध॥"

एक आधी घड़ी भी अगर प्रेमसे प्रभुका नाम लिया जाये, संतोंका संग किया जाये, सेवाकी जाये, तो करोड़ों पापका नाश होता है और अगले जन्ममें भी मनुष्य योनि मिलती है। तब पूर्व जन्मके संत दर्शनके फल स्वरूप अधिक सत्संग करेगा, प्रभु चिंतन करेगा। इस प्रकार भक्तिका फल इकट्ठा होते-होते एक दिन इस शरीरसे मुक्ति पा लेगा। जगदीशमें लीन हो जायेगा। जो मनुष्य "सबमें एक ही ब्रह्म है" ऐसा जान लेगा, वह ब्रह्ममें मिल जायेगा। जो प्राणी सदा विषय-भोगोंमें लगा रहेगा, उसकी चित्तवृत्ति कभी भी भगवान्‌की ओर नहीं लगेगी। उसको चाहिए कि वासनाओंसे मुख मोड़ कर उसे प्रभु चिंतनमें लगाये।

भक्तजनों, जहाँ तक हो सके, संतजनोंकी सेवा करो, निश दिन प्रभुका ध्यान करो। मनुष्य जन्म बड़ी मुश्किलसे प्राप्त होता है, उसे ऐसे ही मत गवाँओ, कुछ पुण्य-दान करके नाम जप करके यश प्राप्त करो। ऐसे धीरे-धीरे मुक्ति मार्ग पर चलते रहो। अपना भी कल्याण करो और दूसरोंका भी उद्धार करो। ॐ तत्सत्॥
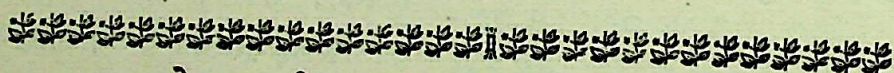
प्रत्येक प्राणी भगवान की गोद में बैठा है।

एक बार चार वर्ष के बच्चे को मैंने हाथों से उपर उठाया। बिजली के पंखे को हिलाकर वह खुश हुआ और बोला, 'मैंने पंखा चला दिया।' जमीन पर उतार कर मैंने कहा—'अच्छा फिर से चलाओ तो' इस पर बोला—'गोद में लो।' ठीक यही दशा मानव के साथ है। जब तक परम पिता हमारे शरीर में विद्यमान हैं, हम जो चाहें, कर सकते हैं। उनके हटते ही हमारे हितैषी तुरन्त श्मशान घाट ले जाते हैं। मानव का कर्तव्य है, ईश्वर को अपने अन्दर बैठा जानकर सद्कर्म करते रहना।

फ
३४३
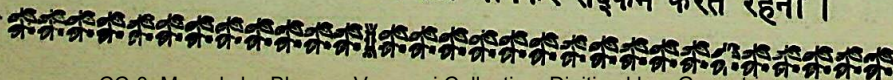
साधक की साधना

आत्म दर्शन

ले०— मोरेश्वर राव चांदोरकर

आत्मा परमात्माका अंश है परन्तु जैसे निर्मल जलमें अनेक रंग अलग-अलग मिलानेसे अनेक रंगके जल हो जाते हैं वैसे ही काम क्रोधादिके रंग आत्मामें मिलनेसे मन रंगीला हो जाता है।

रंगोंको दूर करनेसे जैसा जल निर्मल हो जावेगा वैसे ही रागोंको दूर करनेसे रंगीला मन निर्मल आत्मा हो जावेगा।

जैसे निर्मली वनस्पतिका बीज मलिन जलमें डालनेसे जल निर्मल हो जाता हैं वैसे ही विवेकका बीज रंगीले मनमें डालनेसे आत्मा निर्मल हो जाता है, क्योंकि रागोंके रंगोंसे रंगा हुआ आत्मा मन है और मनके राग दूर करनेसे आत्मा निर्मल हो जाता है।

जैसे शांत निर्मल जलमें मनुष्य अपना प्रतिबिंब देख सकता है वैसे ही निर्मल आत्मामें मनुष्य त्रिकुटीमें ध्यान जमाके ब्रह्मको देख सकता है।

रागोंके रंग रसोंसे चढ़ते व बढ़ते हैं इसलिये जो कोई त्रिकुटीमें ध्यान जमाके ब्रह्ममें लीन होना चाहता है उसे रसोंको स्वाधीन करना चाहिये, तब वह रागोंको स्वाधीन कर सकेगा और रागोंको स्वाधीन करेगा तब उसका मन स्वाधीन होगा और मन स्वाधीन होनेसे आत्मा निर्मल हो जावेगा—तभी वह संसारके सब काम अपनी इच्छानुसार करके ब्रह्ममें लीन हो सकेगा।

त्रिकुटीमें ध्यान जमाने वालेकी स्मरण-शक्ति बढ़के वह दिव्यदृष्टि हो सकता है और भूत, भविष्य, वर्तमान, तीनों कालका हाल बता सकता है; वह जगतमें सब शक्ति पा सकता है और अंतमें ब्रह्ममें लीन हो आवा-गमनसे छूट अनंत काल तक शांति सुख भोग सकता है; अतः त्रिकुटीमें ध्यान जमानेका अभ्यास कर आत्मोन्नति करना चाहिये।

संसार सुख भोग जो स्वप्न-सा क्षणिक है, उसके भोगने वाले जीवको जन्म मरणके चक्रमें पड़ अपने किये हुए दुष्कर्मोंका फल भोगना पड़ता है। परंतु जो जीव संसार सुख त्याग कर परोपकार करके त्रिकुटीमें ध्यान जमानेका अभ्यास करता है उसे अपनी इच्छानुसार जगतके लाभार्थ काल चक्रकी गतिको बदल देनेकी शक्ति मिलती है और अंतमें ब्रह्ममें लीन होकर अनंत काल तक शांति एवं सुख भोगनेको मिलता है।

संसार सुख भोगना जिसका अन्तिम उच्च ध्येय है उसे राजा कहते हैं और ब्रह्ममें लीन होना जिसका अन्तिम उच्च ध्येय है उसे योगी कहते हैं—

राजाको दूसरोंको मारकर दबाना पड़ता है अर्थात् जीतना पड़ता है परन्तु योगी अपने मन को जीतनेसे ही जगतको जीत लेता है अर्थात् जगत भरको अपने वशमें कर लेता है।

राजाको दूसरोंको जीतनेके लिये लड़ाई करना, किले बनाना व हथियार इकट्ठा करने की आवश्यकता पड़ती हैं परन्तु योग साधन करनेवालेको अर्थात् त्रिकुटीमें ध्यान जमानेवाले को नैसर्गिक छः शक्तियाँ :—मारण, मोहन, उच्चाटन, आकर्षण, वशीकरण और वैह्याकरण ये हथियार योगबलसे मिल जाते हैं—

राजाकी शक्ति परावलंबी होती है परन्तु योगी सर्वशक्तिमान होता है।

वीर्यवान मनुष्यको संसारमें दो प्रकारकी शक्ति मिलती है :—

१—शारीरिक २—मानसिक। शारीरिक शक्ति वाला चाहे तो राजा हो सकता है परन्तु मानसिक शक्तिवाला त्रिकुटीमें ध्यान जमानेका अभ्यास कर अपनी इच्छानुसार कालचक्रकी गति को बदल सकता है और ब्रह्ममें लीन हो सकता है।

त्रिकुटीमें ध्यान जमानेका अभ्यास करने की जिनकी इच्छा हो—उन्हें अहिंसा धर्म पालन कर वीर्य रक्षा के नियमोंपर चलना चाहिये—

क्योंकि वीर्यसे शक्ति और शक्तिसे जीवन है। अपने शरीरमें आग, हवा, पानी ये तीन तत्व हैं जिनसे सब काम चल रहा है।

ध्यान जमानेका अभ्यास करनेवालेको आहार-व्यवहार ऐसा करना चाहिये जिसमें ये तीनों तत्व मिले रहकर अपना काम यथोचित किया करें। क्योंकि यदि इनमेंसे एक, दो या तीनों बिगड़ जाँय तो शरीरकी व्यवस्था बिगड़के रोग और मृत्यु होना सम्भव हैं।

जैसे रेलगाड़ीका ड्राइवर एनजिन में आग, हवा, पानीसे भाफ बनाकर एनजिनको कई मील ले जा सकता है। परन्तु इनमेंसे एक दो, या तीनों बेहिसाब होवें तो भाफ न बन सकेगी न एनजिन चल सकेगा और भाफ बनने पर भी यदि वह ड्राइवर भूलसे या मूर्खतासे भाफ फेंक देगा तो भी एनजिन न चल सकेगा।

वैसे ही मनुष्यके शरीरमें काम करनेवाले तत्व आग, हवा, पानी हैं। मन रूपी ड्राइवर यदि आग, हवा, पानीको बढ़ाने या घटानेवाले रस खायगा तो भाफ रूपी वीर्य बिगड़ जायगा और शरीर रूपी एनजिन बराबर न चल सकेगा और वीर्य नाश होनेसे शरीर ऐसा ही अचल हो जावेगा जैसा भाफ नाश होनेसे रेलगाड़ीका एनजिन हो जाता है।

जैसे तीन तत्व शरीरके भीतर काम कर रहे हैं वैसे ही तीन तत्व शरीरके बाहर काम कर रहे हैं।

जो योगी त्रिकुटीमें ध्यान जमाके ब्रह्ममें लीन होनेकी इच्छा करता है उसे आग, हवा, पानी ये तीनों तत्व जो उसके शरीरके बाहर हैं, उनसे भी अपने शरीरका बचाव करना चाहिए—

जैसे तेज धूप पड़ती हो, तेज हवा चलती हो, या तेज पानीका प्रवाह हो या बरसात हो तो इनसे अपने शरीरका बचाव करना चाहिए अथवा इनको सहन करने का अभ्यास करना चाहिये।

अपूर्ण—शेष-अगले अंकमें देखें।

तुलसीके राम

एक विचारक

●
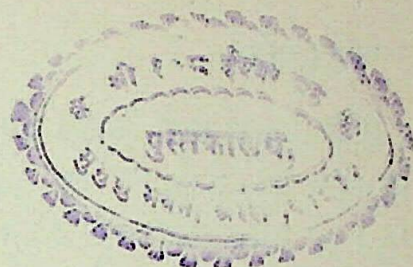
गोस्वामीजी अपने अद्वितीय रामका गुण-गान करना चाहते हैं, किन्तु "यतोवाचो निवर्तन्तेऽप्राप्य मनसा सह" का स्मरण करके कुछ संकोच कर रहे हैं--

सगुझत अमित राम प्रभुताई।
करत कथा मन अति कदराई॥

क्यों न हो ? उनके रामको श्रुतियाँ भी "नेति नेति" कहकर इङ्गित मात्र कर सकीं हैं--
नेति नेति कहि जासु गुन करहिं निरन्तर गान॥

संकोच करनेसे क्या लाभ ? छाती तानकर अपने रामको परब्रह्म घोषित क्यों न कर दिया जाय—

एक अनीह अरूप अनामा।
अज सच्चिदानन्द परधामा॥
व्यापक विश्वरूप भगवाना।
तेहिं धरि देह चरित कृत नाना॥

सीता और रामका उल्लेख देखकर किसीको द्वैत प्रतिपादनका भ्रम नहीं होना चाहिए--

गिरा अरथ जल बीचि सम,
कहियत भिन्न न भिन्न।
बंदउँ सीताराम पद,
जिन्हहिं परम प्रिय खिन्न॥

जैसे शब्द और अर्थमें एवं जल और तरङ्गमें कोई भेद नहीं वैसे ही सीता और राममें कोई अन्तर नहीं, दोनों एक ही तत्त्व हैं, नाममात्रका अन्तर है।

'राम' नामके 'र' और 'म' दोनों अक्षरोंकी अभिन्नतामें गोस्वामीजी दृष्टान्त देते हैं, "ब्रह्मजीव सम सहज संघाती"। ब्रह्म और जीवकी एकरूपता अद्वैत निष्ठामें ही सम्भव है। अद्वैतवादमें ही नाम आदि अध्यस्त पदार्थोंके द्वारा ही अकथ-अनामय अधिष्ठान तक पहुँचा जाता है—

नाम जीहि जपि जागहिं योगी।
विरति विरंचि प्रपञ्च वियोगी॥
ब्रह्म सुखहिं अनुभवहिं अनूपा।
अकथ अनामय नाम न रूपा॥

राम नामका अधिष्ठान शुद्ध अद्वैत तत्त्व ही है—

व्यापक एक ब्रह्म अविनासी।
सत चेतन घन आनँद रासी॥

कथा आरम्भ करते हुए गोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं कि मैंने यह कथा अपने गुरुसे वराहक्षेत्रमें सुनी थी, किन्तु तब बालपनके कारण कथा समझ नहीं सका था। यहाँ सन्देह होता है कि दाशरथि रामकी कथामें क्या रहस्य था, जो समझमें नहीं आया ? "पिताकी आज्ञासे श्रीराम वन गये। सीताजी साथ थीं।

रावणने सीताका हरण किया। श्रीरामने रावण-का संहार कर डाला।" बस, इतनी तो कथा थी। इसे समझ लेना क्या कठिन था? अतः मानना होगा कि यह रामकी कथा कुछ विलक्षण है, जिसे समझ सकनेका सामर्थ्य बालकमें नहीं होता। बालक नचिकेताको यमराज ब्रह्मोपदेशके आरम्भमें कहते हैं—"न सांपरायः प्रतिभाति बालम्" (कठो० १।२।६) अर्थात् ब्रह्म-प्राप्तिका मार्ग बालकको सहसा समझमें नहीं आता। गोस्वामी तुलसीदासजी अग्रिम दोहेमें कठोप-निषद्के अग्रिम पद्यका ही अनुवाद करते प्रतीत होते हैं। कठोपनिषद्में कहा है—

"आश्चर्यो वक्ता कुशलोऽस्य लब्धाऽऽश्चर्यो ज्ञाता कुशलानुशिष्टः।" अर्थात् इस आत्मकथाके वक्ता और श्रोता दोनों ही दुर्लभ हैं, कोई ही ज्ञानी पुरुष इसका ज्ञाता होता है। गोस्वामीजी कहते हैं—

श्रोता वक्ता ज्ञाननिधि कथा रामकी गूढ़।

इस पद्यका 'गूढ़' पद बड़े महत्त्वका है। तुलसीके रामकी कथा उतनी ही गूढ़ है, जितनी कि कठोक्त ब्रह्म-कथा—

"तं दुर्दर्शं गूढमनुप्रविष्टम्" उस नितान्त दुर्दर्श गुह्य तत्त्वकी कथा समझना सुकर नहीं। इससे यह भली भाँति प्रकट हो जाता है कि गोस्वामीजी ऐसे अद्वैत तत्त्वके ही उपदेशका उपक्रम करने जा रहे हैं। जिसे बालक नहीं समझ सकता। भगवद्गीताका उपक्रम इस ढंग का न होने पर भी उसे उपनिषद् कहा जाता है, क्योंकि ब्रह्म विद्याका उसमें प्राधान्य है। फिर भला ब्रह्मविद्याके प्राधान्य और उपक्रमका इतना औचित्य पाकर इस रामायणको उपनिषद् क्यों न कहा जाय?

गुरुके बार-बार कहने पर गोस्वामीजी समझे, और खूब—

भाषा बद्ध करब मैं सोई।
मोरे मन प्रबोध जेहिं होई॥

यहाँ 'प्रबोध' पदका सन्तोष अर्थ करके व्याख्याताओंने इस चौपाईकी महनीयता समाप्त ही कर डाली है। प्रबोधका प्रसिद्ध अर्थ होता है जागरण। 'उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान् निबोधत" आदि श्रुतियोंका वरदान इस चौपाईमें निहित है। गोस्वामीजीका कहना है कि "मैं सोई" ('अहं सः' या 'सोऽहम्') यह उपदेश हम भाषाबद्ध करब (करेंगे) जिससे कि मेरे मनकी निद्रा भंग हो और वह जाग जाय। यहाँ भाषाबद्ध पद भी कम महत्त्वका नहीं है। "आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यः"— इस श्रुतिमें जो आचार्य वेदान्तविचारको परि-संख्या विधि मानते हैं, उनका कहना है कि "तत्त्वमसि" आदि उपनिषद्के वाक्योंका ही श्रवण-मनन करना चाहिए "वह तू है" आदि भाषाके वाक्योंका नहीं—यह उक्त श्रोतव्य विधिका तात्पर्य है। उन आचार्योंको चुनौती देते हुए गोस्वामीजी कह रहे हैं—उसी अभेद तत्त्वका मैं भाषामय उपदेश करूँगा, उससे भी वैसा ही बोध होगा, जैसा कि संस्कृतके वेदान्त-वाक्योंसे। संस्कृत न जानने वाले व्यक्तियोंने क्या अपराध किया है? तत्त्व-बोधके लिए

केवल अन्तःकरण शुद्ध होना चाहिए। भाषा वाक्यसे भी उसमें प्रबोध हो सकता है।

"भाषाबद्ध करब मैं सोई"—इस पद्यमें "मैं" का 'करब' के साथ अन्वय नहीं हो सकता, क्योंकि करब, जाब, खाब आदि शब्द बहुवचन हैं। 'मैं करिहउँ' होता है, 'मैं करब' नहीं। दूसरी बात यह भी है 'तत्ते पदं संग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत्'—इस प्रकार कठ-प्रतिपादन का साम्य भी "मैं सोई" का साक्ष्य देता है। स्वयं गोस्वामीजी अगली चौपाईमें कहते हैं—

निज सन्देह मोह भ्रम हरनी।
करउँ कथा भवसरिता तरिनी॥

निज या आत्माका सन्देह है—"मैं क्या हूँ?" इसका परिहार "मैं सोई" से ही हो सकता है। श्रीरामकी यह 'भवसरिता तरनी' कथा वही है, जो कठोक्त "अभयं तितीर्षतां पारं" की कथा है।

मनमें प्रबोध देनेवाली रामकी कथा ही—"बुध विश्राम सकल जन रञ्जनि" है। जिस कथासे साधारण व्यक्तियोंका मनोरंजनमात्र होता है, उसीसे प्रबुद्ध (ज्ञानी) को सर्वथा विश्राम मिल जाता है। चौरासी लाख शहरोंमें भटकते फिरते इस बटोहीको अब विश्राम मिला और अनन्तके लिए। वह अब "सा काष्ठा सा परागतिः" की अवस्थामें पहुँच चुका है। इससे कठका यह पद्य भिड़ाइये—"यस्तु विज्ञानवान् भवति समनस्कः सदा शुचिः। स तु तत्पदमाप्नोति यस्माद्भूयो न जायते॥" अब बताइए वह प्रबोध क्या सन्तोषमात्र है? और वह कथा क्या रहस्यमयी नहीं? उसे क्या बाल हृदय समझ लेगा?

यह रामकी कथा—"पुनि विवेक पावक कहुँ अरनी" है। कठोपनिषद् कथित "अरण्योर्निहितो जातवेदाः" ही यहाँकी अग्नि है। जिन लकड़ी-कुन्दोंमें घर्षणसे अग्नि उत्पन्न की जाती है, उन्हें अरणि कहते हैं। अरणियों (अधर अरणि और उत्तर अरणि) की सहायतासे अग्नि निकाली जाती है—नीचे के कुन्दे (अधरारणि) में छोटा-सा गड्ढा किया जाता है, उसमें रूई रखी जाती है, रूई पर शंकु (लड़की का बरमा) रखा जाता है, उस शंकुके ऊपर दूसरा लकड़ीका कुन्दा उत्तरारणि) रखकर दबाया जाता है। शंकुको रस्सी की सहायतासे मथते हैं, थोड़ी देरमें वह रूई जल पड़ती है। अग्नि उत्पन्न हो गई। मुमुक्षु अधरारणि है, आचार्य उत्तरारणि, राम कथा शंकु है। "पुनि-पुनि गुरु सन सुनी"—यह मन्थन है। मुमुक्षुके शुद्ध अन्तःकरणके गड्ढेमें वह ज्ञान अग्नि धधक उठती है, और उसमें देह भस्मीभूत हो जाता है, फिर तो—

ज्ञानाग्निदग्धदेहस्य न च श्राद्धं न च क्रिया।

श्री गोस्वामीजी आगे कहते हैं—

सोई वसुधातल सुधा तरङ्गिनि।
भय भञ्जनि भ्रम भेक भुअङ्गिनि॥

वही रामकी कथा वसुधा पर प्रवाहित-सरिता है। इसके अमृतमें क्या गुण है? यह दिखानेके लिए कहा—'भय भञ्जनि'। भय की व्याख्या भ्रम पदसे की है। द्वैत भ्रमरूप भयकी भञ्जिका यह अमृतवाहिनी अद्वैत-चर्चा ही हो सकती है—

ज्ञानामृतरसो येन सकृदास्वादितो भवेत् ।
स सर्वत्रममुत्सृज्य तत्रैव परिधावति ।।

जिस व्यक्तिने ज्ञानरूपी अमृतका रसास्वादन एक बार भी कर लिया है, वह समस्त श्रम-भयसे रहित होकर वहीं (जिस भूमि पर पहले विचरनेसे भय खाता था, उसी भूमिमें) निर्भय होकर विचरण करता है। उपनिषदूमें ज्ञान पद स्वरसतः अद्वैत ज्ञानको ही कहता है। द्वैतदर्शीके लिए जो जगत् दुःख रूप है, ज्ञानीके लिए वही आनन्द कानन है—

अज्ञस्य दुःखौघमयं ज्ञस्यानन्दमयं जगत् ।
(वाराहो० २।२२)

कविका सरल हृदय कह उठता है—"कथा प्रवन्ध विचित्र बनाई" अर्थात् जनताको सच्चारित्र्य-निर्माणकी शिक्षा देनेके लिए अपने रामकी चर्चाको जान-बूझकर मैंने ललित कलाओंसे सुसज्जित किया है, उनकी वास्तविक महिमा तो गुणातीत है—

सप्त प्रवन्ध सुभग सोपाना ।
ज्ञान नयन निरखत मन माना ।।
रघुपति महिमा अगुन अबाधा ।
बरनब सोइ बर वारि अगाधा ।।

इस लीला-सरोवरके सात सोपान हैं, उन्हें ज्ञानकी दृष्टिसे देखने पर मन आनन्द-विभोर हो जाता है। क्यों न हो ? जिस (स्वमहिम्नि प्रतिष्ठितः) अपनी अगुन अबाध महिमामें हमारे राम स्वयं अवस्थित हैं, उसके वे ही सात सोपान हैं, जो ज्ञानके हैं।

इस मानसरोवरमें विविध धर्म, कर्म और भक्तिका पावन दर्शन होता है, किन्तु वे सब इस उद्यानके पत्र-पुष्प ही है, फल तो ज्ञान ही है—

(क्रमशः)

भूले मनको पथ बतला दो

(श्री ठाकुरदत्त त्रिपाठी)

भूले मनको पथ बतला दो
भव बन्धनके भँवर जाल में
पड़कर यह मन भटक रहा है
नश्वर जगकी मृगमरीचिका-
की आशामें अटक रहा है
सर्वमान्य जो सत्य मार्ग हो।
उसको ही अब तुम दिखला दो ।।
बहु अधर्म के आघातों से
कोमल मानस अति व्याकुल है
किसी अलौकिक महा शक्तिकी
छाया पानेको आकुल है
भवके तामस भूत भगाकर।
उरमें अभय प्रदीप जला दो ।।
व्यथित हृदयको कम्पित करती
भयकी काली रात अँधेरी
सकल चेतना खो देती है
विभ्रमकी बरसात घनेरी
शान्ति और सुखकी सरिता में।
मेरा आतुर मन नहला दो ।।
भूले मनको पथ बतला दो ।।

रामायणमें परमानन्द

संकलनकर्त्ता—श्री कैलाश नाथ मिश्र,

चौ०—श्री रघुनाथ रूप उर आवा। 'परमानन्द' अमित सुख पावा।
हर-हिय रामचरित सब आये। प्रेम पुलक लोचन जल छाये ॥१॥
हरष-विषाद ज्ञान-अज्ञाना। जीव धर्म अहमिति अभिमाना।
राम ब्रह्म व्यापक जग जाना। 'परमानन्द' परेस पुराना ॥२॥
जाकर नाम सुनत सुभ होई। मोरे गृह आवा प्रभु सोई।
'परमानन्द' पूरि मन राजा। कहा बुलाई बजावहु बाजा ॥३॥
'परमानन्द' प्रेम रस फूले। बीथिन्ह फिरहिं मगन मन भूले।
यह शुभ चरित जान पै सोई। कृपा राम कै जापर होई ॥४॥
वधुन्ह समेत देखि सुत चारी। 'परमानन्द' मगन महतारी।
पुनि-पुनि सीय राम-छवि देखी। मुदित सफल जगजीवन लेखी ॥५॥
नाना भाँति निछावरि करहीं। 'परमानन्द' हरष उर भरहीं।
कौशल्या पुनि-पुनि रघुवीरहिं। चितवति कृपा सिन्धु रनधीरहिं ॥६॥
छं०—जय-जय अविनासी, सब घट वासी, व्यापक 'परमानन्दा'।
अविगत गोतीतं, चरित पुनीतं, माया रहित मुकुन्दा ॥
जेहि लागि विरागी, अति अनुरागी, विगत मोह मुनिवृन्दा।
निसि बासर ध्यावहिं, जनगन गावहिं, जयति सच्चिदानन्दा ॥७॥
नभ दुन्दुभी बाजहिं विपुल, गन्धर्व किन्नर गावहीं।
नाचहिं अपसरावृन्द 'परमानन्द' सुर मुनि पावहीं ॥
भरतादि अर्जुन विभीषनांगद, हनुमदादि समेतते।
गहे छत्र-चामर व्यजन धनु, असि-चर्म शक्ति विराजते ॥८॥
दोहा—लछुमन अरु सीता सहित, प्रभुहिं विलोकति मातु।
'परमानन्द' मगन मन, पुनि-पुनि पुलकित गातु ॥९॥
हिय हरषहिं बरषहिं सुमन; सुमुखि सुलोचन वृन्द।
जाँहि जहाँ जहँ बन्धु दोऊ, तहँ-तहँ 'परमानन्द' ॥१०॥
'परमानन्द' कृपा यतन; मन परिपूरन काम।
प्रेम भगति अनपायनी; देहु हमहिं श्रीराम ॥११॥

(तुलसी कृत रामचरित मानस से)

पुरुष हो पुरुषार्थ करो उठो......

श्री वेदान्तीजी

पवित्रता तीन प्रकारकी है—वाणीकी, कर्मकी और मनकी। इन तीनों प्रकारकी पवित्रतासे जो युक्त है, वह स्वर्गका अधिकारी है। जहाँ सदाचारी, ज्ञानी और तपस्वी वेदज्ञ रहते हों, वह स्थान तीर्थ कहलाता है। पवित्र तीर्थोंमें स्नान, पवित्र वेद मन्त्रों या भगवान्‌के नामोंका कीर्तन एवं सत्पुरुषोंके साथ वार्तालाप—इन कार्योंको विद्वान् पुरुष उत्तम बताते हैं। सज्जन पुरुष सत्संगसे पवित्र हुई सुन्दर वाणी रूप जलसे ही अपनी आत्माको पवित्र मानते है। जो मन, वाणी, कर्म और बुद्धिसे कभी पाप नहीं करते, वे ही महात्मा तपस्वी हैं; केवल शरीर सुखाना ही तपस्या नहीं है। जो व्रत उपवासादि करके मुनिकी वृत्तिसे रहता है किन्तु अपने कुटुम्बी जनों पर दया नहीं करता वह कभी निष्पाप नहीं हो सकता। उसकी यह निर्दयता उस तपका नाश करने वाली है, केवल भोजन त्याग देनेसे तपस्या नहीं होती। जो निरन्तर घर पर रहकर भी पवित्र भावसे रहता है और सब प्राणियों पर दया करता है, उसे मुनि ही समझना चाहिए, वह सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त हो जाता है।

ज्ञानसे ही जरा-मृत्यु आदि सांसारिक व्याधियोंसे पिण्ड छूटता है और उत्तम पदकी प्राप्ति होती है जिस प्रकार अग्निमें भूने हुए बीज नहीं उगते, उसी प्रकार ज्ञानरूपी अग्निसे सभी अविद्या जनित क्लेशोंके दग्ध हो जाने पर पुनः उनसे आत्माका संयोग नहीं होता।

एक या आधे श्लोकसे भी यदि सम्पूर्ण भूतोंके हृदय देशमें विराजमान आत्माका ज्ञान हो जाय, तो मनुष्यके सम्पूर्ण शास्त्रोंके अध्ययनका प्रयोजन समाप्त हो जाता है। कोई "तत्त्वमसि" इन दो ही पदोंसे आत्माको जान लेता है; कुछ लोग मन्त्र पदोंसे युक्त सैकड़ों और हजारों उपनिषद्-वाक्योंसे आत्म-तत्त्वको समझते हैं। जैसे भी हो, आत्म-तत्त्वका सुदृढ़ बोध ही मोक्षका साधन है। जिसके हृदयमें संशय है, आत्माके प्रति अविश्वास है, उसके लिये न लोक है, न परलोक और न उसे कभी सुख ही मिलता है। ज्ञानवृद्ध पुरुषोंने ऐसा ही कहा है। इसलिये श्रद्धा और विश्वासपूर्वक निश्चयात्मक बोध ही मोक्षका हेतु है। यदि कोई अविनाशी एवं सर्वव्यापक आत्माको युक्तिसे जानना चाहता है तो तर्कवाद छोड़कर उसको चाहिए कि श्रुतियों और स्मृतियोंका आश्रय ले, क्योंकि उनमें आत्माका बोध कराने के लिये बहुत उत्तम युक्तियाँ उपलब्ध हैं। जो केवल तर्कका आश्रय लेता है, उसे साधनकी

जो आपने पूछा है।

समाधान कर्ता—श्री वेदान्ती जी

शङ्का—जड़ विकारी सर्व प्रपञ्च ब्रह्मरूप कैसे हो सकता है ?

समाधान—सर्वं खल्विदं ब्रह्म तज्जला-निति शान्त उपासीत ॥

(छान्दोग्य उ०)

अर्थात् सर्व-प्रपञ्च ब्रह्म से उत्पन्न हुआ है, ब्रह्ममें ही स्थित है तथा ब्रह्ममें ही विलीन हो जाता है। इस कारण सर्व प्रपञ्च ब्रह्मरूप है क्योंकि उपादान-कारण ही कार्य रूप होता है। यदि सर्व-प्रपञ्चका निमित्त कारण ही ब्रह्म होता, उपादान कारण न होता तो सर्व-प्रपञ्चका विलय ब्रह्म में नहीं हो सकता था; क्योंकि कार्य अपने उपादानमें ही विलीन हो सकता है अपने निमित्त कारणमें विलीन नहीं हो सकता।

तरङ्ग-फेन-भ्रमबुद्बुदादि सर्वं
स्वरूपेण जलं यथा तथा।
चिदेव देहाद्यहमन्तमेतत्
सर्वं चिदेवैकरसं विशुद्धम् ॥

(विवेक चूड़ामणि)

अर्थात् जैसे जलमें ही उत्पन्न स्थित तथा लीन होनेसे तरङ्ग, फेन, भँवर और बुद्बुदे आदि स्वरूपसे सब जल ही हैं, उसी प्रकार देह से लेकर अहङ्कार पर्यन्त यह सारा प्रपञ्च भी एक रस शुद्ध चैतन्य ब्रह्म ही है। ब्रह्मका तटस्थ लक्षण भी श्रुतियोंमें इसी प्रकार वर्णित है।

यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते
येन जातानि जीवन्ति।
यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति तद्विजिज्ञासस्व

विपरीतताके कारण आत्माकी सिद्धि नहीं होती। अतः आत्माको वेदोंके द्वारा ही जानना चाहिए, क्योंकि आत्मा वेदस्वरूप है, वेद ही उसका शरीर है। वेदसे ही तत्त्वका बोध होता है। आत्माका अनुभव सूक्ष्म बुद्धिके द्वारा होता है। अतः मनुष्यको चाहिए कि इन्द्रियोंकी निर्मलताके द्वारा अपवित्र विषय भोगोंको त्याग दे। इन्द्रियोंके निरोधसे होनेवाला अनशन (उपवास या विषयोंका अग्रहण) दिव्य होता है। तपसे स्वर्ग मिलता है, दानसे भोगोंकी प्राप्ति होती है, तीर्थ स्नानसे पाप नष्ट होते हैं परन्तु मोक्ष तो ज्ञानसे ही होता है ऐसा समझना चाहिए।

———

तद् ब्रह्मेति ॥ (तैत्ति० उ०) जन्माद्यस्य यतः ॥ (ब्रह्मसूत्र १।१।२।२)

अर्थात् ब्रह्म ही अखिल जगत्का अभिन्न-निमित्तोपादान-कारण है। इसीलिए भगवान् कृष्णने अर्जुनको गीतामें तथा उद्धवको भागवत में सर्व ब्रह्मका उपदेश किया है—"वासुदेवः सर्वमिति ।" (गीता)

आत्मैव तदिदं विश्वं सृज्यते सृजति प्रभुः ।
त्रायते त्राति विश्वात्मा ह्रियते
हरतीश्वरः ॥ (भागवत)

शङ्का—यदि सर्व प्रपञ्च ब्रह्मका परिणाम है तो ब्रह्म निष्क्रिय निर्विकार एकरस कैसे सिद्ध होगा ?

समाधान—आत्मनि चैवं विचित्राश्च हि । (ब्रह्मसूत्र २।१।२८)

अर्थात् जैसे आत्मा निद्रा द्वारा स्वप्न प्रपञ्चके रूपमें भासमान होने पर भी परिणाम को प्राप्त नहीं होता और निष्क्रिय भी बना रहता है। अथवा जैसे योगी अपनी योगशक्ति से अनेक रूपोंमें भासमान होनेपर भी परिणामको प्राप्त नहीं होता अर्थात् उसके पूर्व शरीरमें विकृति नहीं होती; उसी प्रकार माया द्वारा सर्व प्रपञ्चके रूपमें भासमान होने पर भी ब्रह्म निर्विकार निष्क्रिय ज्योंका त्यों अखण्ड बना रहता है। अर्थात् उसके स्वरूपमें कोई विकृति परिवर्तन हुए बिना ही सर्व प्रपञ्चकी रज्जु-सर्पवत् अविद्या पर्यन्त अन्यथा प्रतीति हुआ करती है। अतः सर्व प्रपञ्च ब्रह्मका परिणाम नहीं विवर्त है। यह नियम है कि अध्यस्थ अधिष्ठान रूप होता है और अध्यस्तसे अधिष्ठान सदा असङ्ग निर्विकार रहता है। अतः सर्वप्रपञ्च ब्रह्मरूप है और ब्रह्म असंग निर्विकार भी है। अधिष्ठान होनेसे ब्रह्मको कारण कहा गया है वास्तवमें कारण तो अविद्या है।

ब्रह्माज्ञानात् जगज्जन्म ब्रह्मणोऽकारणत्वतः ।
अधिष्ठानत्व - मात्रेण कारणं ब्रह्म गीयते ॥
कालत्रये यथा सर्पो रज्जौ नास्ति तथा मयि ।
अहङ्कारादि देहान्तं जगन्नास्त्यहमद्वयः ॥

जैसे रज्जु-सर्पसे भयभीत व्यक्तिको कोई यह उपदेश करे कि डरो मत यह सर्प रज्जु है। इसका यह भावार्थ हुआ कि यह सर्प नहीं रज्जु है। उसी प्रकार सर्व-प्रपञ्च ब्रह्म है इसका भावार्थ यह है कि अविद्या जनित भ्रममात्र होने से प्रपञ्च नहीं है ब्रह्म ही ब्रह्म है। अतः ब्रह्ममें अध्यस्त होनेसे सर्व-प्रपञ्चका ब्रह्मसे उसी प्रकार बाध-समानाधिकरण्य है जैसे कल्पित सर्पका रज्जुसे बाध-समानाधिकरण्य है।

मरु-भूमौ जलं सर्वं मरुभूमात्रमेव तत् ।
जगत्त्रयमिदं सर्वं चिन्मात्रं स्वविचारतः ॥
अनवद्य अखण्ड न गोचर गो,
सब रूप सदा सब होय न गो।
इति वेद वदन्ति न दन्तकथा,
रवि आतप भिन्न न भिन्न जथा ॥
दो०—उमा जे रामचरण रत,
विगत काम मद क्रोध ।
निज प्रभु मय देखहि जगत,
केहि सन करहिं विरोध ॥

सत्ययुग आ रहा है

अनन्तकोटि ब्रह्माण्डकी सृष्टि ही लीलामयकी लीलासे हुई है। लीलासे ही यह जगत् प्रकाशित और विकसित होकर अनिर्वचनीय सौन्दर्यकी प्रभा फैला रहा है। और एक दिन लीलाके लिए ही ये असंख्य ग्रह, उपग्रह, नक्षत्रमण्डल, स्वर्गलोक, मर्त्यलोक और रसातल किसी अगाध गढ़में डूब जायँगे। सगुण ब्रह्म निर्गुण हो जायगा, प्रकाश-ब्रह्म अप्रकाश में रूपरहित होकर छिप जायगा। ब्रह्माण्डका वह कल्पनातीत परिणाम अव्यक्त है, उसको प्रकाश करनेके लिए मनुष्यके पास शब्दोंका अभाव है। मनुष्य जातिके लिए यह लीला असीम है, इसका आदि अन्त नहीं है, यह अनादि कालसे रथके पहियेकी तरह चक्कर करती आ रही है। लीलाके गुण और विकास के हिसाबसे मनुष्यने उसे चार भागोंमें विभक्त कर दिया है। क्रमशः उनका नाम सत्ययुग, त्रेतायुग, द्वापरयुग और कलियुग है। अनादिकालसे भगवानकी अपार लीला मनुष्यके बीचमें इसी उपरोक्त क्रमानुसार धारा-प्रवाहकी तरह बहती चली आ रही है। सत्ययुगके बाद त्रेता, त्रेताके बाद द्वापर और द्वापरके बाद कलिका प्रादुर्भाव होता है। कलिके बाद क्रमानुसार पुनः सत्य, त्रेता इत्यादिका आगमन होता है। इसलिए कलियुग ही साधनाका उत्तम युग है; क्योंकि भविष्यके स्वर्ग राज्यके लिए भगवान इसी युगमें मनुष्यको तैयार करते हैं। चारों युगोंमें प्रथम और सर्वप्रधान युग सत्ययुग ही है। इस युगमें देवतागणका निवास होता है, पृथ्वीपर धर्म अपने चारों पैरों सहित विराजमान

रहता है, पृथ्वी उर्वरा और उपजाऊ होकर सभी प्राणियोंको सबल, स्वस्थ और हृष्ट-पुष्ट बनाती है। ब्राह्मण वेद-विद्या-पारंगत होते हैं, क्षत्रिय यज्ञ यागादि करते रहते हैं, वैश्य श्री-विष्णु भगवानकी पूजामें दत्तचित्त होकर धर्म-युक्त वाणिज्य-व्यवसाय करके स्वच्छन्द जीवन व्यतीत करते हैं और शूद्र द्विजाति-मात्रकी सेवामें रहते हैं। इस तरह इस युगमें वर्णा-श्रमधर्मकी पूर्ण प्रतिष्ठा होती है। सम्पूर्ण नर-नारीगण चोरी, शठता इत्यादि हीन वृत्तियोंको त्यागकर, आधि-व्याधिसे मुक्त होकर स्वर्गीय जीवनका उपभोग करते हैं। भगवानका पूरा आनन्द मनुष्यके जीवनमें इसी युगमें विकसित होता है। मनुष्यको अपनी चेष्टासे कुछ नहीं करना पड़ता। स्वभाविक शक्ति ही मनुष्यको सत्य भागसे भर देती है, किन्तु यह भी काल तथा अवस्थाविशेषसे विवश होनेके कारण काल पूर्ण हो जानेपर आनन्दका यह खेल भंग करना आरम्भ कर देती है। मनुष्यकी चेष्टा जितनी प्रबल होती है प्रकृति उतनी ही तेज नीचेकी ओर उतरने लगती है। फल यह होता है कि धर्मके चारों चरणोंमेंसे एक चरण नष्ट हो जाता है और त्रेतायुगका समागम होता है। स्वभावमें परिवर्तन हो जानेपर भी मनुष्य प्राप्त अधिकारोंको सहजमें छोड़नेकी इच्छा नहीं करता। अहंकारके मदसे चूर्ण मनुष्य भगवानकी इच्छाकी गति समझनेमें असमर्थ हो जाता है और जो कुछ वह (भगवान) नष्ट करता है उसकी रक्षाके लिए अधिकाधिक चेष्टा और यत्न करने लगता है। द्वापरयुगमें मनुष्य बुद्धि की सहायतासे नाना प्रकारके नैतिक और सामाजिक विधानोंके द्वारा मानवसमाजके बीच दैवीयुगको घेर रखनेकी चेष्टा करता है, किन्तु स्वभावशक्ति सत्ययुगके अनेक प्रभावों को नाश कर देती है और केवल आधे पुण्यके सहारे मनुष्य इस अवनीतलमें सुख-दुःख, पाप-पुण्यसे मिश्रित जीवन बिताता है। कलियुगमें धर्मका बिलकुल लोप हो जाता है। पुण्यका जो कुछ अंश बाकी रह जाता है वह भी पापके प्रबल अन्धकारमें पड़कर अत्यन्त संकुचित और अस्पष्ट दिखायी देता है।

हम पहले ही कह आये हैं कि यह कलियुग एकदम बुरा नहीं है; क्योंकि भविष्यत युगको और भी महान् एवं विराट् तथा पूर्ण करनेके लिए इसी युगमें आयोजन और अनुष्ठान करना होता है। फिर सत्ययुगकी नयी तैयारी होने लगती है। पाँच-छः हजार वर्ष जो कलियुगके बीते हैं, इतने दिनोंमें भारतवर्षका बचा-खुचा प्राचीन ऐश्वर्य, प्राचीन ज्ञान, प्राचीन सत्यता तथा धर्म सबका अन्त हो गया। वेद, उपनिषद तथा भारतके अन्य प्राचीन धर्मग्रन्थोंमें विहित कथाओंका बहुत कम अंशोंमें प्रचार रह गया है। किन्तु अब पुनर्संगठनका युग आ गया है। भारतकी उन्नतिका आरम्भ हो गया है, विपत्तिकी काली घटा जो भारतके गगनमें मडरा रही थी हट रही है, पूर्व आकाशमें उषाका उज्ज्वल प्रकाश दिखाई पड़ रहा है, प्रकृतिके गुप्त मन्दिरमें सुन्दर दीपक सज्जित हो गया है, शीघ्र ही भगवानकी आरती उतारी जायगी।

नवीन युगके आरम्भके उपलक्ष्यमें धर्म, नीति, विद्या ज्ञान इत्यादि अनेक प्रकारके आन्दोलन मनुष्य समाजमें अवतीर्ण हुए देखे जा रहे हैं। किन्तु यथार्थ सत्यका पता तब भी किसीने नहीं पाया है। सबसे पहले भारतवर्ष ही इस सत्यका पता लगानेमें समर्थ होगा।

आज संसारमें जिस नये युगका आविर्भाव होगा, जिस धर्म, सत्य, प्रेम तथा ऐक्यकी भगवानने पृथ्वीपर प्रतिष्ठा करनेकी इच्छा की है, वह वर्तमान मानवचरित्रके आंशिक परिवर्तनसे सम्भव नहीं। आधुनिक मानवजातिके बीच कानूनी-बन्धन-विधान चलाने से काम नहीं चल सकता। एकबार काया पलट करनी होगी, पुराने संस्कारोंसे यह कार्य सिद्ध नहीं होगा, बाह्य जीवनमें थोड़ा-सा परिवर्तन लानेसे, अथवा मनुष्यके कार्य-परम्पराकी धारा बदल देनेसे भी यह पूरा नहीं होगा। आवश्यकता इस बातकी है कि यह पुनर्संगठन भीतरसे आरम्भ होना चाहिए। मानव अन्तःकरणको एक दमसे नया आकार-प्रकार धारण करना होगा, मन, प्राण और चित्तकी वृत्तियोंमें पूर्णरूपसे परिवर्तन करना होगा। इसका कारण यह है कि मानव समाज एवं जगत्की सम्पूर्ण वस्तुओंका स्वभाव ही विचित्रतापूर्ण हो गया है। एकताका भाव बदलकर उनमें अनेकताका भाव आ गया है। प्रत्येक मनुष्यके अन्तःकरण में जो समताका भाव था उसने विषमताका रूप धारण कर लिया है। इसी स्वभावके परिवर्तनके लिए योगका आश्रय लेना होगा, राजनीतिक अथवा सामाजिक संघकी स्थापनासे अथवा किसी आदर्श या दर्शनशास्त्र इत्यादिके द्वारा इसका समूल परिवर्तन सम्भव नहीं है। योगके द्वारा हमें अपने मध्यमें भगवानको प्राप्त करना होगा, अपने जीवनको भगवद्भावसे ही पुनर्संगठित करना होगा। हमें अपने मध्यमें तथा समस्त विश्वके मध्यमें इस जागृत परात्पर पुरुषका साक्षात् कराये बिना यह परिवर्तन अथवा उद्धार सम्भव नहीं। पूर्णयोगके द्वारा ही यह सब सम्भव है। भारतवर्ष अपना सर्वस्व खोकर भी जिस योगपद्धतिकी रक्षा इतने दिनोंसे गुप्तरूपसे करता आ रहा है, उसी पूर्णयोगकी साधनासे सिद्ध होकर भारतवर्ष नवयुगकी स्थापना करेगा।

यदि राजनीतिसे विज्ञानको अलग रखा जाय और वैज्ञानिक किसी अदृश्य शक्तिकी खोजमें लग जाँय तो ईश्वरीय कृपाको हम ठीक उसी प्रकार पा सकते हैं जैसे आज घरमें रात्रिको विद्युत प्रकाश फैला सकते हैं।

मैं इस सत्यको स्वीकार करता हूँ कि मेरे देशमें ऐसे विद्वान, सन्त हो चुके हैं जिन्होंने केवल इच्छा शक्तिको प्रबल करके ईश्वरीय कृपा प्राप्त की।

यदि हम अपने धर्म ग्रन्थोंको लौकिक एवं पारलौकिक दोनों दृष्टिसे देखें तो हमें दूसरे राष्ट्रकी सहायता न लेनी पड़े।

मनका दमन करो रे भाई !

लें०—पं० लक्ष्मीधर शास्त्री

मनको इन्द्रियोंके वशमें न होने देनेका नाम दम है। मनुष्यके अन्दर मन इन्द्रियोंका राजा है। जिस तरफ मन इन्द्रियोंको चलाता है उसी तरफ इन्द्रियाँ अपने विषयोंमें दौड़ती हैं। इसलिये जब तक मनका बुद्धिके द्वारा दमन नहीं किया जाता, तब तक इन्द्रियोंका निग्रह नहीं हो सकता। इन्द्रियोंके वशमें यदि मन हो जाता है तो इन्द्रियाँ इसको विषयोंमें फँसाकर मनुष्यका सत्यानाश कर देती हैं। कृष्ण भगवान् गीतामें कहते हैं—

इन्द्रियाणां हि चरतां यन्मनोऽनुविधीयते।
तदस्य हरति प्रज्ञां वायुर्नावमिवाम्भसि ॥

इन्द्रियाँ विषयोंकी ओर दौड़ती रहती हैं। ऐसी दशामें यदि मन भी इन्द्रियोंके पीछे दौड़ता है, तो वह मनुष्यकी बुद्धिका इस प्रकार नाश कर देता है, जैसे हवा नौकाको पानीके अन्दर डुबा देती है। इसलिए जब कभी मन बुरी तरहसे विषयोंकी ओर दौड़े, अपनी स्वाभाविक चंचलताको प्रकट करे तभी बुद्धि और विवेकसे खींचकर उसकी जगह पर ही उसको रोक देवे। कृष्णजी कहते हैं:—

यतो यतो निश्चरति मनश्चञ्चलमस्थिरम्।
ततस्ततो नियम्यैतदात्मन्येव वशं नयेत् ॥

अर्थात् यह चंचल और अस्थिर मन जिधर-जिधरको भागे, उधर ही उधरसे उसको खींच लावे; और इसको अपने वशमें रखे।

मनकी गति किधरको होती है ? या तो यह विषयोंके सुखकी ओर दौड़ेगा, अथवा किसीके प्रेम और मोहमें दौड़ेगा, अथवा किसीकी निन्दा-स्तुति, द्वेष या किसीको हानि पहुँचानेकी ओर दौड़ेगा। जो शुद्ध मन होगा, वह ईश्वरकी ओर दौड़ेगा, उसीमें एकाग्र होगा अथवा दूसरेका उपकार सोचेगा। इस प्रकार मनुष्यका मन अपनी वेगवान् गतिसे सदैव दौड़ा ही करता है। इसको यदि एक जगह लाकर ईश्वरमें लगा देवे, तो उसीका नाम योगाभ्यास है। परन्तु मनका रोकना बहुत कठिन है। इस विषयमें परम भगवद्भक्त वीरवर अर्जुनने भगवान् कृष्णसे कहा था :—

चंचलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद्दृढम्।
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम् ॥

हे कृष्ण यह मन बड़ा चंचल है। इंद्रियोंको विषयोंकी ओरसे खींचता नहीं है, बल्कि और ढकेलता है। चाहे जितना विवेकसे काम लो, फिर भी इसको जीतना कठिन है। विषय वासनाओंमें बड़ा दृढ़ है। इसका निग्रह करना

तो ऐसा कठिन है जैसे हवाकी गठरी बाँधना। इस पर भगवान् कृष्णने कहा:—

असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम्।
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते॥

हे वीरवर अर्जुन इसमें सन्देह नहीं, यह मन अत्यन्त चंचल है, और इसका रोकना बहुत कठिन है, फिर भी दो उपाय ऐसे हैं जिनसे यह वश में किया जा सकता है, वे उपाय हैं—अभ्यास और वैराग्य।

अभ्यास—अर्थात् बार बार और बराबर मन की हरकतों पर हम यदि ध्यान रखें, और उसको अपने वश में लाने का प्रयत्न जारी रखें तो ऐसा नहीं कि वह वश में न हो जावे।

वैराग्य—अर्थात् संसारके जितने विषय हैं, उनका उचित रूप से, धर्म से सेवन करें—सेवन करें और फँसे नहीं। इनके पीछे पागल न हो जावें। अपनी आत्मा और संसार को हानि न पहुँचावें। बल्कि अपनी आत्मा और संसार के कल्याण का ध्यान रखते हुए यदि हम संसारके कर्त्तव्यों का पालन करें; और आसक्तिरहित होकर विषयों का सेवन करें, तो यह भी वैराग्य ही है। इस प्रकार की चित्तवृत्ति का अभ्यास करने से मन वश में हो जाता है; और प्रसन्नता प्राप्त होती है। यही बात कृष्ण भगवान् गीता में कहते हैं:—

रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन्।
आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति॥

जो विषयों से प्रेम और द्वेष छोड़ देता है—अर्थात् उनमें फँसता नहीं है, धर्मपूर्वक विषयों का सेवन करता है—जिसका मन वशमें है वह प्रसन्नता प्राप्त करता है। उसको विषयों का सुख दुःख नहीं मालूम होता। मन परमात्मा और धर्ममें लीन रहता है। ऐसे पुरुष को कभी क्लेश नहीं होता। क्लेशमें भी वह अपने मनका दमन करके सुख ही मानता है। न उसको अपने ऊपर द्वेष या क्रोध होता है; न दूसरे के ऊपर।

दान्तः शमपरः शश्वत् परिक्लेशं न विन्दति।
न चतप्यति दान्तात्मा दृष्ट्वा परगतां श्रियत्॥
महाभारत, वनपर्व।

जो सदैव मन और इंद्रियों को वश में रख कर शान्त और दान्त रहता है, वह दुःख का अनुभव नहीं करता। जिसने अपने मनका दमन कर लिया है, वह दूसरेके सुख को देख कर कभी जलता नहीं बल्कि सुखी होता है।

कई लोगोंका मत है, कि मन को दबाना कभी नहीं चाहिए। किन्तु मन जो माँगता जावे, वही उसको देते रहना चाहिए। इस प्रकार जब मन खूब विषय-उपभोग करके तृप्त हो जायगा, तब आप ही आप उसका दमन हो जायगा। परन्तु भगवान् मनु कहते हैं कि:—

न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाऽभिवर्धते॥
मनुस्मृति, अ० २

विषयोंके भोगकी इच्छा विषयोंके भोगसे कभी शान्त नहीं हो सकती; किन्तु और भी बढ़ती ही जाती है। जैसे आगमें घी डालनेसे आग और बढ़ती है। इसलिये विवेकसे मनका दमन करनेसे इंद्रियाँ आप ही आप विषयोंसे खिंच आती हैं। जैसे कछुआ अपने सब अंगोंको

अन्दर सिकोड़ लेता है, वैसे ही इंद्रियाँ अपनेको विषयोंसे समेट करके मनके साथ आत्मामें भीतर संलग्न हो जाती हैं। जब मनुष्यकी ऐसी दशा हो जाती हैं तब विषयोंसे विरक्त मनको आत्मामें स्थिर करके वह मोक्ष प्राप्त करता है। इसीलिए कहते हैं कि :-

मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः।
बन्धाय विषयासक्तं मुक्तो निर्विषयं मनः॥

मन ही मनुष्यके बन्धन और मोक्षका कारण है; क्योंकि विषयोंमें फँसा हुआ मन बन्धनमें है; और विषयोंसे छुटा हुआ मुक्त है। ज्ञानी लोग विषयोंसे मनको छुड़ाकर इसी जन्ममें मुक्तिका अनुभव करते हैं।

मनकी वासना, जो सदैव बुरे और भले मार्गोंकी ओर दौड़ा करतो है, उसको बुरे मार्गों की ओरसे हटाकर सदैव कल्याण-मार्गकी ओर लगाते रहना चाहिए, यही मनका दमन है।

'कवि कौतुक'

[रामजी प्रसाद गुप्त 'कवि कौतुक']

चल सत्य गयो है रसातल को,
सब झूठ को शंख बजावत हैं।
ठगि लोभ मचो है चहूँदिसि में,
निज धर्म को धोइ बहावत हैं॥
परमारथ में न परे पग रंचहुँ,
स्वारथ को सब धावत हैं।
कवि 'कौतुक राम' न जात कहीं,
नित नूतन नाच नचावत हैं॥१॥

अब मूढ़ महा जग मान लहैं,
परनिन्दक नाम कहावत हैं।
परमारथ पंथ न जानत हैं,
पर मुक्ति को राह बतावत हैं॥
'कवि कौतुक' कोटि उपाय करौ,
रस राम के नाम न भावत हैं।
कलि में लबरा जबरा बनिकै,
अबरा लखि नित्य सतावत हैं॥२॥

सेवककी डायरी—

बाबाजीका बनज व्यापार

ले०—हजारीलाल लालचन्द सलुजे

दिनांक ७. २. ५७

गुरुवार दोपहर के एक बजे आज मैं रामटेकड़ी गुरुदेव बाबाजीके दर्शनको पहुँचा। बाबाजी गुफाके बाहर आये और सब देवमूर्तियों के दर्शन कर अपने आसन पर विराजमान हुए। सभी प्रेमी भक्तगण दर्शनकर धन्य हुए। बाबाजीने सबको आशीर्वाद और प्रसाद दिया। एक प्रेमी जोधपुरसे आए हुए थे। उन्होंने बाबाजीसे प्रार्थना की—"महाराज जी हमको अपनी शरणमें ले लीजिए। पन्द्रह साल पहले आपके दर्शन को मैं रोज आया करता था। उस समय मैं पूनामें ही घोड़े भगानेवालोंपर मास्टर था। उस समय भी दासने यही प्रार्थना की थी।" बाबाजीने कहा—"जाओ भगवान-को याद करो।" जोधपुरसे आए हुए सज्जन ने पूछा—"किस नाम से भगवान्‌को याद करूँ?"

बाबाजी बोले—"भगवान, भगवान करो। भगवानके अनन्त नाम हैं, चाहे जिस नामसे भगवानको याद करो। जाइए अब समय हो गया है।" सब अपने अपने घरको गये।

दिनांक ८. २. ५७

शुक्रवार शामको आठ बजे आज जब मैं गुरुदेव बाबाजीके दर्शनको श्री रामटेकड़ी पर गया तो बाबाजीके पास कुछ मिलटरीके ऑफी-सर बैठे हुए थे। मैं भी बाबाजीके चरणकमलोंमें माथा टेक कर बैठ गया। सुबेदार रामस्वरूपजी ने बाबाजीसे हाथ जोड़ कर कहा—"मैंने अपने एक मित्र को 'निर्गुण रामायण' तथा 'ॐ ब्रह्म सुमिरिनी त्रिसन्ध्या' ये दोनों ग्रन्थ भेज दिए हैं। उनका विचार शिवरात्रिको 'निर्गुण रामायण' का अखण्ड पाठ करनेका है। मगर शिवरात्रि का दिन शुद्ध नहीं है। उस रोज अखण्ड पाठ करें या नहीं।"

बाबाजीने कहा—"पाठ पूजा तो जब चाहें कर सकते हैं। शिवरात्री तो और भी उत्तम है, अगर मनमें कुछ शंका हो तो पहले कर लें। पर इसमें शंका ही क्या, यह तो अशुद्धको शुद्ध करनेकी चीज है। नाम जप कथा कीर्तन, हरी भजन तो कभी भी कर सकते हैं। इसमें किसी प्रकारका कोई बन्धन नहीं है। मनमें सच्चे प्रेम और उत्साहकी जरूरत है। गुरु नानक देवजी अपनी बाणीमें लिखते हैं—

सब दिन दीन सुदीन है,
सब दिन बारम्बार।
नानक भद्रा तब लगे,
जब रुठे करतार॥

अर्थात् वही दिन सब दिनसे खराब है जब प्रभु परमात्माकी याद दिलमें न हो।" इतना सुनकर रामस्वरूपजी बहुत प्रसन्न हुए और अपने साथियोंके साथ बाबाजीके चरणों पर माथा टेक कर बाबाजीका गुणगान करते हुए चले गये।

दिनांक १०-२-५७

रविवार दिनके दो बजे आज जब मैं श्री राम टेकड़ी गुरुदेव बाबा जीके दर्शनको गया तो मेरे साथ-साथ ही श्री अजित भाई मेहता, और श्री कापडीया साहब अपने बाल बच्चोंके साथ बाबा जीके दर्शनको आए। हम सबने बाबा जीके दर्शन किये और बाबा जीके चरणोंमें बैठ गये। बाबाजीने सबसे सुख समाचार पूछा। श्री मेहता जी बाबा जीसे बोले—'बम्बईका बारह लाखका काम मिल गया है।" बाबाजीने कहा—"बहुत अच्छा हुआ। परमात्माकी कृपा है। अभी तो आपका नाम ठेकेदारीमें बहुत बढ़ जायगा। गुरुदेव आबाद रखे।" श्री मेहता जीने कहा—"सब आपकी ही कृपा है महाराज जी" इस पर बाबा जी बोले—"आपन बीजा आपे खाए, नानक हुक्मी आवे जाय" अर्थात् आप पूर्व जन्मका पुण्य किये हैं उसका फल मिल रहा है। और अब भी साधु-सन्तोंकी सेवा कर रहे हैं। पुण्य रूपी बीज बो रहे हैं, सो बड़ा अच्छा है। गुरु परमात्माकी कृपासे बाल बच्चों को सम्भालते हुये सन्तोंकी, भूखे-दूखेकी सेवा करते रहें, ठीक है। जाइये परमात्मा जय देवे।" श्री मेहता जी और श्री कापड़ियाजीने बाल-बच्चोंके साथ बाबाजीका शुभाशीर्वाद और प्रसाद लिया। इसके बाद एक सरदार जी बाबाजीके पास अमृतसरसे आए। उन्होंने हाथ जोड़कर बाबाजीसे कहा—"परमात्माकी बड़ी कृपा हुई जो आज आपके दर्शन हो गये। एक बात पूछना चाहता हूँ। आज्ञा हो तो पूछूं।" बाबा जी बोले—"हाँ-हाँ! पूछो।" सरदारजीने कहा "क्रोध बहुत बढ़ गया है महाराज। इसका कुछ उपाय कृपा करके बताइए।" बाबाजीने कहा—"तुम नाम जपते जाओ, क्रोध आप ही ठीक हो जायेगा, सबसे बड़ा उपाय यही है कि—"उठत, बैठत, सोवत नाम, कहि नानक जनके सद् काम।' इतना कहते हुए बाबाजीने कहा—"जाइए खालसा॥ ॐ सतिनाम॥" सरदार जी बाबाजीके चरणों पर बड़े प्रेमसे माथा टेक कर चले गये। इतनेमें एक माई बड़े प्रेमसे बोली—" बाबाजी मैं बीमार हूं। कृपा करो ठीक हो जाऊँ। बाबाजीने विभूतिकी पुड़िया माईको दी और आशीर्वाद दिया, जाओ माता।" माईने पूछा—"इसे खाऊँ?" बाबाजी ने कहा—"इसे मस्तक पर लगाना और थोड़ा मुखमें छोड़ना और भगवानको याद करो, अच्छी हो जाओगी।"

आज रविवारकी छुट्टी का दिन होनेसे बड़ी भीड़ थी। सब प्रेमियोंकी जबान पर एक ही शब्द था। 'कृपा करो महाराज।' और बाबाजीका सबके लिए यही उत्तर था—'भगवानको याद करो, करतारको याद करो सब अच्छा होगा।' प्रेमियोंकी भीड़ हट जानेके बाद एक सरदारजीने बाबाजीसे उपदेश, गुरुमंत्र

लिया। गुरुमंत्र देनेसे पहले बाबाजीने सरदारजी को कुछ शिक्षा दी—"नाम जपना, सतका व्यवहार करना, सत्-असत्का विचार करना, सतो गुणी भोजन और साधुकी संगत करना, प्राणीमात्र पर दया करना।" सरदारजीने सत् वचन कहा और बाबाजीको माथा टेककर आशीर्वाद लिया।

एक भगतजीने पूछा—"बाबाजी भक्ति कैसी करनी चाहिए।" बाबाजीने कहा—"निष्काम भक्ति करो तो बड़ा अच्छा है। निष्काम भक्ति तो वही है जिसमें अपने लिए कुछ न हो। प्रभुसे कुछ माँगो नहीं' जो कुछ करो सब भगवानके लिए करो। भगवानकी प्रसन्नताके लिए करो। और सच तो यह है निष्काम भक्तोंको किसीसे कुछ माँगनेकी जरूरत ही नहीं पड़ती। भक्तोंकी सब इच्छा भगवान पूरी कर देते हैं। जैसे कि एक सेवक मालिककी सेवा करता है और मालिकसे वेतन कुछ नहीं लेता और सेवामें भी फरक नहीं आने देता। वह सेवक अगर कहीं पकड़ा जाए तो मालिक जल्दीसे उसे छुड़ानेकी कोशिश करेगा। जब तक वह सेवक घर नहीं आ जावे तब तक मालिकको चैन नहीं पड़ेगा। क्योंकि वह सेवा करता है और सेवाके बदले कुछ लेता नहीं। एक सेवक सेवा करता है और महीनेके महीने अपना वेतन लेता है वह सेवक अगर कहीं पकड़ा जावे तो मालिक कहेगा कोई खराब काम किया है तभी पकड़ा गया है। अब भुगते, करनीका फल हम क्या करें। जब संसारी जीवोंकी ऐसी बात है तो भगवान दुनियाँके मालिक हैं। जो दीनबन्धु भगवान हैं वे क्यों नहीं निष्कामी सेवकोंकी हर तरहसे देख भाल करेगें।" ॐशान्ति।

संसार में जितने भी धर्म हैं, जितनी राजनीतिक संस्थाएँ हैं, जितने भी 'वाद' और कानून हैं वे सब अपने मौलिक रूपमें जनता का भला चाहते हैं। किसी भी मंच पर कोई वक्ता जनता का अहित करने को अच्छा काम नहीं कहता।

फिर वह ऐसा कौन सा अवरोधक तत्व है जिससे प्रत्येक धर्म, प्रत्येक कानून, प्रत्येक 'वाद' की निन्दा होती है ?

इसका एक ही कारण है, 'व्यक्तिगत स्वार्थ।'

हम अनन्त शक्ति के पुन्ज हैं, हमें निरन्तर सद्कार्य करना चाहिए। जब सारे संसार का भला होगा तो अपना भला स्वतः हो जायगा।

नूतन संवत्सर सबके लिए मङ्गलमय हो।

[ले०--विद्याभास्कर श्री सरयू प्रसाद शास्त्री 'द्विजेन्द्र' साहित्यरत्न]

ब्रह्माजी सर्वप्रथम जब संसारकी सृष्टि करने लगे तो उस समय चन्द्रमा चित्रा नक्षत्र पर था। इसलिये चित्रा नक्षत्रसे युक्त पूर्ण चन्द्र होनेके कारण चैत्री पूर्णिमा उस तिथिका नाम पड़ा। तबसे आज तक प्रायः चैत्रीको चित्रा होती भी है। चैत्र मास प्रतिपदाको ही ब्रह्माने संसारकी रचना की। बृहन्नारदीय पुराणमें लिखा भी है—"चैत्रे मासि जगद् ब्रह्मा समर्ज प्रथमेऽहनि।" यही कारण है कि अन्य महीनों की अपेक्षा चैत्र को ही प्रथम मास गिना गया है। और उसी दिन संवत्सर भी बदलता देखा गया है। अतः विक्रमीय संवत् चैत्रसे चला। सृष्टि विज्ञानानुसार ज्योतिर्गणनाका क्रम भी तभी से चला। जिस प्रकार पूर्णिमाके दिन चित्रा नक्षत्रके कारण उसका चैत्र मास नाम पड़ा. उसी प्रकार क्रमशः विशाखासे वैशाखी ज्येष्ठासे ज्येष्ठी, पूर्वाषाढ़ासे आषाढ़ी, श्रवणसे श्रावणी, पूर्वाभाद्रपदसे भाद्री, अश्विनीसे आश्विनी, कृत्तिकासे कार्त्तिकी, मृगशिरासे मार्गशीर्षी, पुष्यसे पौषी, मघासे माघी और पूर्वा-फाल्गुनीसे फाल्गुनी पूर्णिमा का होना सम्भव सिद्ध हुआ। जिससे बारहो मासके नाम चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ, आषाढ़, श्रावण, भाद्रपद, आश्विन, कार्तिक, मार्गशीर्ष, पौष, माघ और फाल्गुन पड़ गया। प्रत्येक मासके दो पक्ष होते हैं। पहला कृष्णपक्ष, और दूसरा शुक्लपक्ष।

भारतीय संस्कृतिके प्रतीक स्वरूप सृष्टि कार्यके संचालक सूर्य, चन्द्र, ग्रह, नक्षत्र आदि सौर मण्डलके विधायक शास्त्रोंने तभीसे मास, पक्ष तिथिवार और नक्षत्र आदिके सहयोगसे सभी पर्व एवं उत्सवोंका प्रतिपादन किया, जो वर्तमान समय कल्प भेदसे अनेक भेदोपभेदके रूपमें देश कालानुसार दृष्टिगोचर हो रहे हैं। कहीं-कहीं सन्देहास्पद भी हो जाते हैं। इसलिए उनके वैज्ञानिक विधानोंका संक्षिप्त विवेचन करना आवश्यक प्रतीत होता है।

सृष्टिकालके आदि वर्षको 'संवत्सर' कहते हैं। इसमें १२ महीने रहते हैं। स्मृतिसागरमें लिखा है—'स च संवत्सरः सम्यग् वसन्त्यस्मिन् मासादयः।' तथा श्रुति भी कहती है—'द्वादश मासाः संवत्सरः।' संवत्सरके मुख्य ३ भेद है। (१) सौर, (२) सावन, (३) चान्द्र।

ज्योति शास्त्रानुसार मासके भी चार भेद हैं—(१) सौर, (२) सावन, (३) चान्द्र, (४) नाक्षत्र। उनमें सूर्य संक्रान्तिके आरम्भसे मास पर्यन्त सौर मास। सूर्योदयसे सूर्योदय पर्यन्तके ३० दिनका सावन मास। शुक्ल और कृष्ण भेदसे 'चान्द्रमास' और अश्विनी नक्षत्रसे रेवती

चैत्र मासके पर्वोत्सव

(१) **वसन्तोत्सव**—चैत्र कृष्ण १ शुक्रवार दिनांक ३ मार्च सन् १९६१ ई० को होलीके बाद यह उत्सव पड़ता है। उस दिन सर्वप्रथम होलिका धूलि वन्दनके पश्चात् आम की मंजरीका स्पर्श एवं भोजन करना चाहिये। वाराणसीमें चतुःषष्ठी देवीका दर्शन किया जाता है। और भी देशकालानुसार आनन्दोत्सव मनाना चाहिए। पारस्परिक प्रेम संवर्द्धन करना ही इस उत्सवका मुख्य ध्येय है। अतः वर्तमान रूढ़िवाद एवं दूषित कार्योंसे पृथक् रहनेकी शिक्षा अनिवार्य होनी चाहिए।

(२) **गणेश चतुर्थी व्रत**—चैत्र कृष्ण ४ सोमवार (६–३–६१)

(३) **शीतलाष्टमी**—चैत्र कृष्ण ८ शुक्रवार (१०–३–६१)

(४) **पापमोचनी११शी**—चैत्र कृष्ण ११ सोमवार (१३–३–६१) को है।

(५) **मीन संक्रान्ति**—चैत्र कृष्ण १२ मंगलवार दिनांक १४ मार्चको मीनकी संक्रान्ति पड़ती है। उस दिनसे १ मास तक 'खरमास' कहा जाता है। उसमें विवाहादि शुभकृत्य नहीं किये जाते।

(६) **चैत्र वारुणि**—चैत्र कृष्ण १२ मंगल (१४-३-६१) को ही प्रातःकाल ६॥ बजेसे वारुणी पर्व है। पर इस वर्ष कोई विशेष योग नहीं पड़ा उसी दिन प्रदोष व्रत भी है। उसके बाद दिनांक १५ मार्चको मास शिवरात्रि तथा 'काम महोत्सव' है।

(७) **चैत्री प्रतिपदा**—चैत्र शुक्ल १ शुक्रवार दिनांक १७ मार्चको है। इसी तिथिको ब्रह्माजीने सृष्टि-रचना प्रारम्भ की। इसी दिन मत्स्यावतारका आविर्भाव तथा सत्ययुगका प्रारम्भ हुआ। जान पड़ता है, इसी कारण भारतके सार्वभौम प्रतापी सम्राट् विक्रमादित्यने

पर्यन्त चन्द्रभोगका नक्षत्र मास होता है। ये समय-प्रयोजनके अनुसार भिन्न-भिन्न मास विहित हैं। जैसे विवाहादिमें सौर, यज्ञादिमें सावन, श्राद्धमें चान्द्र और ग्रहजन्य मूल शान्ति कर्ममें नाक्षत्र मास लिया जाता है।

यद्यपि होली बाद ही संवत्सरके परिवर्तन का आभास मिलने लगता है। परन्तु चैत्रशुक्ल प्रतिपदासे ही वास्तविक संवत् बदलता है। अतः इस वर्ष आनन्द नामक विक्रमीय संवत् २०१८ शाके १८८३ सन् १९६१ ई० आगामी चैत्र शुक्ल १ शुक्रवार दिनांक १७ मार्चसे प्रारम्भ होगा।

अपने संवत्सरका आरम्भ (आज से लगभग सवा दो हजार वर्ष पूर्व) इसी चैत्र शुक्ल १ प्रतिपदाको ही किया था। वर्तमान युगमें इसी की प्रधानता है।

नवरात्रारम्भ

चैत्र शुक्ल प्रतिपदासे नवरात्रारम्भ होता है। क्योंकि उसी दिन मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् रामचन्द्रजी रावण पर विजय प्राप्त करके अयोध्या आये। और देवीका समाराधन प्रारम्भ किया। तबसे देवी नवरात्रका उत्सव लोकमें प्रचलित है। तदनुसार इस वर्ष चैत्र शुक्ल १ शुक्रवार (१७ मार्च) को प्रारम्भ है। उसी दिन देश कालके भेदसे तिलक व्रत, आरोग्य व्रत, विद्याव्रत, आदि अनेक व्रत पड़ते हैं। इसी प्रकार चैत्र शुक्ल २ शनि (१८ मार्च) को नेत्रव्रत, बालेन्दुव्रत, चैत्र शुक्ल ३ रवि (१९ मार्च) को गौरीव्रत और अरुन्धतीव्रत भी है। चैत्र शुक्ल ४ सोम (२० मार्च) को गणेश चतुर्थीव्रत और पंचमी भौमवार (२१ मार्च) को लक्ष्मीव्रत, सौभाग्यव्रत है। षष्ठी बुधवार (२२ मार्च) का कुमारव्रत तथा सप्तमी गुरुवार (२३ मार्च) को नामसप्तमी व्रत है। चैत्र ८ शुक्रवार (२४ मार्च) को भगवतीव्रत है। इस प्रकार प्रतिदिन कोई न कोई व्रतका विधान शास्त्रोंमें पाया जाता है। पर हमारे यहाँ भी रामनवमी व्रतोत्सवका विशेष महत्व एवं प्रचार है। जो इस वर्ष चैत्र शुक्ल ९ शनिवार पुनर्वसु नक्षत्रमें दिनांक २५ मार्चको है।

यह व्रत नित्य, नैमित्तिक और काम्य भेदसे तीन प्रकारका होता है। भगवान् रामचन्द्र का जन्म आज ही त्रेतायुगमें महाराज दशरथके घरमें हुआ था। उस समय चैत्र शुक्ल नवमी, गुरुवार पुनर्वसु नक्षत्र, कर्क लग्न मध्याह्न था। यह योग सर्वदा सुलभ नहीं होता। केवल जन्म नक्षत्र एवं तिथिकी ही प्रधानता ली जाती है। इस वर्ष पुनर्वसु नक्षत्र मिल रहा है। इसीको श्री दुर्गा नवमीव्रत भी कहते हैं, क्योंकि राम जन्मके पहलेसे ही यह व्रत चला आता है। उन दिनों 'दुर्गा नवमी' नामसे प्रसिद्धि थी। यह उत्सव घर-घर धूमधामसे मनाया जाता है

कामदा एकादशी—चैत्र शुक्ल ११ सोमवार (२६ मार्च) को कामदा नामकी एकादशी स्मार्त्तोंके लिये और १२ मंगलको वैष्णवोंके लिये है। चैत्र शुक्ल १२ बुधवार (२९-३-६१) को प्रदोषव्रत अथवा अनङ्ग व्रत पड़ा है।

चैत्री पूर्णिमा—चैत्र शुक्ल १४ शुक्रवार (३१ मार्च) को चैत्री पूर्णिमा व्रतके लिये है। स्नान-दानके लिये शनिवार (दिनांक १ अप्रैल) को है। * क्योंकि—वैशाख स्नान भी आजसे ही प्रारम्भ होता है।

---

* चैत्री पूर्णिमा चन्द्रोदय व्यापिनी ली जाती है। आज के दिन ब्रह्मपुत्र अथवा गंगा-स्नानका विशेष महत्व है। यदि चित्रा नक्षत्र भी मिल जाय तो अत्युत्तम है। पर इस वर्ष इसका अभाव है। शनिवारको रातमें चित्रा नक्षत्र है—पर वह प्रतिपदामें हो गई है।

देख गगन में अनहद बाजे ?

[लेखिका—श्रीमती कुलदीपा देवी,]

योगी लोग चित्तकी शान्तिके लिए योग-शास्त्रमें बतलाये गये प्राणायाम प्रत्याहार एवं ध्यान-धारणा रूपी योगकी युक्तियोंसे प्राणका निरोध करते हैं। चाहे वे पुरुष हों, चाहे स्त्री योग शास्त्रमें सबका अधिकार है पर उसके मार्ग पृथक्-पृथक् हैं। उनमें चार मुख्य माने गये हैं। १ मंत्र योग, २ हठयोग, ३ लययोग और ४ राजयोग। यहाँ मंत्र योग सम्बन्धी एक विशिष्ट मार्गका निर्देश संक्षेपमें दिया जा रहा है। जिसका नाद, बिन्दु से सन्बन्ध है। इस क्रियासे आत्म शुद्धि होती है। आत्मशुद्धि तभी होती है, जब चित्तकी वृत्तियाँ शान्त हों। उनकी शान्तिका उपाय गुरु द्वारा प्राप्त 'मंत्रयोग, ही हो सकता है, जो किसी भी साधक या साधिकाके लिए परम गुह्य एवं करनेकी वस्तु है। कहनेके लिए तो शास्त्रों में सर्वत्र चर्चा मिलती ही है। पर करने वाले अवश्य दुर्लभ हैं।

योगी जन जब साधन करने लगते हैं तो उन्हें सर्व प्रथम 'नाम' का आभास मिलने लगता है। मैं जब आसन पर बैठती हूँ, तब जो मुझे अनुभव होता है, यहाँ मैं वही लिख रही हूँ। कहाँ तक शास्त्र संगत है यह तो विद्वान् लोग जानें। क्योंकि मैंने शास्त्राध्ययन नहींके बराबर किया है। हाँ, सुननेका अवसर सन्त महात्माओंसे अवश्य मिला है।

आत्म शुद्धिके लिए क्रिया कुशलके मनमें एक विचित्र प्रकारका शब्द सुनाई देता है, उसे ही हम 'नाद' समझती है। उनमें दस नाद एवं सात सीढ़ीयाँ इस प्रकार अनुगत होती हैं।

प्रथम सीढ़ी

प्रथम नाद—में 'चिक्-चिक्' शब्द करता है, सिरमें चक्कर आता है और क्षणिक वेदना भी होती है।

द्वितीय नाद—में 'हन-हन' शब्द करके रोंगटे खड़े हो जाते हैं।

तृतीय नाद—में छोटी घण्टीके समान 'टुन्न-टुन्न' शब्द होता है, उस समय मन प्रफुल्लित हो उठता है, आकाश भी दीख पड़ता है।

चतुर्थ नाद—में बाँसुरीके समान मधुर ध्वनि होना अथवा रेल पर बैठकर हवामें चलना-सा जान पड़ता है।

पंचम नाद—में बड़े-बड़े घण्टेके समान 'टन्न-टन्न' होना तथा भगवान्की प्रस्तरमयी मूर्ति अथवा फोटोके समान सुन्दर चित्र दिखाई देता है।

इस समय साधकका उत्साह बढ़ता है, भगवद्-

दर्शनकी उत्कण्ठा होती है और मन प्रसन्न रहता है।

दूसरी सीढ़ी

षष्ठ नाद—घरी-घण्टाके समान बजता है, मन्दिरमें जैसे आरतीके समय बजता हो। उस समय मनुष्यकी जीवात्मा अन्तःकरणमें प्रवेश कर शरीरकी आभ्यन्तरिक बनावट देखती है। कहाँ कैसा जोड़ है, हड्डियाँ, मांस, पेशी, रक्त नसें और धमनियाँ प्रत्यक्ष दीख पड़ती हैं।

सप्तम नाद—में भोंपोंके समान जोरसे शब्द होने लगता है। उस समय आकाश में चाँद तारे दीखते हैं। झट दीखेगा झट ओझल होगा। और कभी-कभी विद्युत-प्रकाशके समान क्षणिक प्रकाश भी होने लगता है।

तीसरी सीढ़ी

आठवाँ नाद—आठो पहर खाते-पीते सोते-जागते उठते-बैठते सुनाई देगा, जो बड़ा सुहावना जान पड़ता है, मनोमुग्धकारी होता है, क्योंकि एक साथ निरन्तर वह बजता रहता है, बन्द नहीं होता।

नौवाँ नाद—वह है जो ढोलके समान बजता है। उस समय ध्यानमें भगवान्‌के दसो अवतार प्रत्यक्ष दर्शन देते हैं। कभी-कभी सन्त महात्माओंकी भी क्षणिक झाँकी होती है। चित्त गद्‌गद् रहता है, जीव आनन्दमग्न रहता है।

चौथी सीढ़ी

दसवें नाद—में बादल गरजना, बिजुली तड़पना, अमृत बरसना एवं सुहावनी बूँदोंकी झड़ी लगना आदि आँखोंको अच्छा मालूम होता है। उस समय ध्यानमें पूर्ण-ब्रह्म परमात्मा ॐकारमें दीख पड़ते हैं। वह योगीश्वर कहाता है, परमहंस वृत्ति इसीका नाम है। सच्चिदानन्द घन भगवद्दर्शन पाकर साधक परमानन्दको प्राप्त करता है। वही जगद्‌गुरु कहलाने लगता है। अनन्त महिमावाली वह चाहे स्त्री हो चाहे पुरुष हो, दोनोंकी महिमा दोनोंका ऐश्वर्य असीम होता है। उसका गुणगान वेद भी नहीं गा सकता। सरस्वती भी चकित हो जाती हैं। यहीं पर सब सिद्धियाँ प्राप्त होती है।

पाँचवी सीढ़ी

इसके स्वामी ईश्वर हैं। इस समय जीव ईश बनकर ब्रह्मपदको प्राप्त कर लेता है। अर्थात् आवागमनसे रहित होकर जीव मुक्त हो जाता है। उस महात्मा जीवका वैकुण्ठ यह मृत्युलोक ही बन जाता है। सब जीवोंमें व्यापक होकर वह चराचरमें अपनेको और अपनेमें चराचरको स्थिर समझने लगता है। उसका अन्तःकरण विशुद्ध हो जाता है। इसीको 'आत्मशुद्धि' भी कहते हैं।

छठी सीढ़ी

वह परमहंस स्वरूप होकर छठीं सीढ़ी पर चढ़नेके बाद परब्रह्म परपात्माके सर्वश्रेष्ठ

'जगदम्बाका विविध रूप और वाहन'

ले०—बनारसीलाल आर्य, अध्यक्ष अभिमन्यु पुस्तकालय

सिंह स्कन्धाधिरूढ़ा नानालंकार भूषिताम् ।
चतुर्भुजा महादेवीं नाग यज्ञोपवीतिनीम् ॥

कहा जाता है कि "कलौ चण्डी विनायकौः" कलियुगमें देवी और गणेश दो ही सर्व सिद्धि देने वाले और सरलतासे हृदयस्थ हो जानेवाले विग्रहः हैं। देवीके विविध रूप और विविध भाव का आधार कल्पना है। देवीका स्वरूप देवताओंकी शक्ति शालिनी कल्पनाका दिव्य रूप है। इन्हीं दिव्य रूपोंमें दुर्गाका एक स्वरूप आता है। इनका वैदिक प्रकारसे चिन्तन किया जाय तो ज्ञात होगा कि ब्रह्मकी प्रकृति (माया) शक्ति है।

पुराणके आधार पर यह विचार किया जाय तो ज्ञात होगा कि यह हिमालयकी पत्नी मेनकाके गर्भसे प्रकट हुई हैं। मेनका शब्दका अर्थ है—वाणी-गिरि-पर्वत आदिका भाव 'मेधा' होता है। दुर्गाको जगत्माता इसलिये कहा गया है कि समग्र सृष्टिका आधारभूत वही हैं।

नारीसे नरकी उत्पत्ति है। इसलिये परमात्मा नारी और नर इन दो रूपों और गुणोंसे युक्त माना गया है। जिस प्रकार नारीका तीन रूप—पुत्री, पत्नी और माता है उसी प्रकार क्रमशः सत्वगुण, रजोगुण, तमोगुणको एक विशेष रूपमें लेकर महा सरस्वती, महालक्ष्मी, महाकाली का रूप है। उसी प्रकार ब्रह्माकी शक्ति सरस्वती, विष्णुकी प्रकृति स्वरूपा माया शक्ति श्री लक्ष्मी, हैं। इनके विभिन्न रूप हैं। कल्याण करता शिवकी शक्ति महागौरी, दमनके समय शंकरकी शक्ति महा दुर्गा, ये नौदुर्गाके नामसे विख्यात हैं। जिनके विभिन्न गुण, रूप, वाहन आयुध है।

"यस्य देवस्य तद् रूपं यथा भूषण वाहनः"

जो देवता जैसा है वैसी शक्ति भी होगी वैसा ही उसके अनुरूप वाहन, भाव, भावना और फल पूजा भी होगी। जिनके विभिन्न वाहन इस प्रकार अलग अलग हैं।

श्री दुर्गा वाहन सिंह

यह तो ज्ञात हो ही चुका कि दुर्गा-तत्त्व श्री, विद्या, परमा, त्रिलोक जननी आदि कहा गया

धामको देखने लगता है और जब उस धाम की अन्तिम सीढ़ी परमधामको प्राप्त करता है तब सातवीं सीढ़ीका अधिकारी होता है।

सतवीं सीढ़ी

भगवान् श्री कृष्णने उसी धामका संकेत करते हुए अर्जुनसे कहा था—

"यत्र गत्वा न निवर्त्तन्ते तद्धाम परमं मम ।"

है। नव महा विद्या तथा ६४ महा योनियोंका मूल तत्व दुर्गाको ही कहा गया है।

वन्दे वाञ्छित लाभाय चन्दार्ध कृत शेखराम्।
वृषा रूढां शूल धरां शैल पुत्री यशस्विनीम्॥

यह कल्याण करता शिवकी, शक्ति, इनका वाहन वृषभ है जिसका रहस्य, शिववाहन लेखमें देखिए। दुर्गाके उपासकोंके लिए श्री दुर्गा सप्तशती उनका प्रधान ग्रन्थ है।

जिसमें मानवसमाजके लिए संघ शक्तिकी प्रेरणा ही नहीं एक बड़े रहस्यपूर्ण मनोविज्ञान की शिक्षा है।

पौराणिक मतानुसार शुम्भ-निशुम्भ नामक दैत्यके वध निमित्त इनका प्रादुर्भाव हुआ है।

इनका वाहन सिंह इन्हें पिता हिमाचलके द्वारा दिया हुआ है।

वैज्ञानिक दृष्टिसे भगवान सच्चिदानन्दकी आदि शक्तिने प्रकृतिकी द्वन्द्वात्मक प्रगतिमान जीवनकी सृष्टि की है।

इसीसे प्रकृतिमें जो सिंह क्रूरता एवं करालता, हिंसा तथा भयानकताका प्रतीक माना गया है, जो तात्त्विक रूपसे सृष्टिवादी विधायक कार्योंमें अजेय, विक्रम प्रताप, शौर्य और संरक्षक राजसत्ताका प्रतीक भी माना जाता है। जिसे केवल पौराणिक और वेदान्तियों ने ही नहीं माना, जैन धर्ममें अहिंसाके औतार तीर्थंकर महावीरका चिह्न भी सिंह है। रण क्षेत्रमें शस्त्र त्याग करने वाले अहिंसाकी उपासना स्वीकार करने पर भी सम्राट अशोकका राज-चिह्न भी चतुर्मुख सिंहकी उपाधिसे सम्बोधित होता है।

प्रत्यक्षमें आज भारत सरकार ने भी अपने राज-चिह्नमें सिंहको मान्यता दी है। जिसकी अनेक भावात्मक कल्पनायें हैं।

स्वार्थ ग्रसित प्राणीके मध्य सिंह भय और क्रूरताके प्रतीक रूपमें ही सम्मुख आता है। मानव उसे अपने विरोधी शत्रुके रूपमें ही देखता है। इसी प्रकार प्रकृतिकी विराट द्वन्द्वात्मक आयोजनोंमें जहाँ विरोधके भीतरसे ही विकास की प्रगति फल रही है, सिंहको चुनौती है। हमारा भय और कुण्ठा, जगतका कल्याण कारक भगवान शिवका वाहन धमका प्रतीक वृषभ है तो मां शक्तिका वाहन सिंह है। भावनात्मक रूप आत्मामें दया और प्रेम भी है। यही माताकी अभय मुद्राका अर्थ है। माँके चरणोंमें सिंह और गाय दोनों नतमस्तक है।

यही कारण है कि हमारे आर्ष ऋषियोंके सम्मुख सिंह और गाय एक साथ बैठे हैं। जो हमारी दया न्याय और अभय देने वाली विजयनी आत्माका शृङ्गार है।

महिषासुर मर्दनी

'प्राण वै महिषा।' ६।७।४।५ शतपथ ब्राह्मणमें प्राणकी एक संज्ञा महिष है। ये उग्र अज्ञान घोर प्राण है। इसको शान्त कर अपने अधीन रखनेको ही असुरका मर्दन कहा गया है जो योगीके लिए आवश्यक है। प्राण ही सुर-असुर है। यह वृत्तियाँ आसुरी प्राणका संयम, शान्ति, आयु और वर्चस देती हैं।
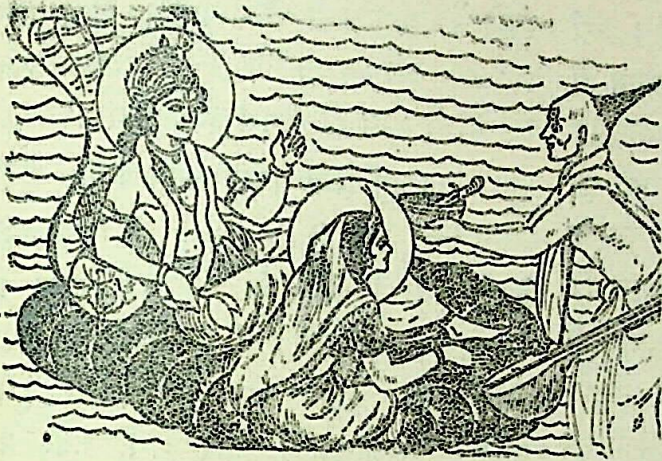
'नारायण नारायण'

ले०—श्री बृहस्पति

भगवान् विष्णु क्षीरसागरमें शेष शय्या पर विराज रहे थे। भगवती श्रीलक्ष्मीजी चरण सेवामें उपस्थित थीं। तभी 'नारायण, नारायण' कीर्तन करते हुए नारदजीका आगमन हुआ।

भगवान्ने मुस्कुराकर पूछा—'कहिये नारदजी, कहाँसे आना हुआ है ?'

नारदजीने कहा—'आप तो अन्तर्यामी हैं। मैं इस समय मर्त्यलोक भारत देशसे आ रहा हूँ।'

'क्यों ! सब कुशल तो है न ?'

'क्या कुशल कहूं ! मैं इस समय एक बहुत बड़ी शंकामें पड़ गया हूँ। मेरी धर्मशास्त्रों में अब आस्था कम होती जा रही है। यदि शंका समाधान न हुआ तो मैं नास्तिक हो जाऊँगा और यह तम्बूरा आदि तोड़कर आत्मघात कर लूँगा।'

'कहिये क्या शंका है आपकी ?' विष्णु भगवान्ने विनोद भावसे पूछा—'भूलोक पर विज्ञानकी मायामें विमोहित तो नहीं हो गये ?'

'नहीं भगवन् यह बात नहीं है।'— नारदजीने कुछ रुककर कहना शुरू किया— 'वेद-पुराण और शास्त्रोंमें मैं आज तक यही पढ़ता आ रहा हूँ कि चौरासी लाख योनियोंमें मानव देह सबसे दुर्लभ है। सभी इसकी कामना करते हैं। इसीके द्वारा धर्म, अर्थ, काम, मोक्षकी सिद्धि होती है। देखता भी रहा हूँ कि मनुष्यका जन्म होने पर भूलोकमें खुशियाँ मनायी जाती थीं। प्रत्येक माता-पिता सौ पुत्रोंकी कामना करते थे। उपनिषद मानव देहकी दुर्लभ प्राप्तिका गुणगान करते हैं। पर आज ये बातें निरर्थक सिद्ध हो गईं हैं। धर्मशास्त्रकी इन बातोंमें अब कोई तथ्य नहीं रह गया है।'

'क्यों क्या हुआ ?' भगवान्ने सब कुछ जानते हुये भी अनजान बनकर बीच ही में पूछ लिया।

'हुआ क्या ! भारत देशमें जिसे आप अपनी लीला भूमि और धर्मक्षेत्र कहा करते हैं वहाँकी हालत देखकर मेरे होश उड़ गये। वहाँके प्रधान मंत्रीका आदेश है कि दो से अधिक बच्चा पैदा न करो, हमारे देशमें

मनुष्योंकी आवश्यकता नहीं है। बड़े-बड़े नेता लोग संतति निग्रहका उपदेश देते हैं। वहाँ मानव जन्मका मूल्य एक नये पैसेके समान हो गया है। यदि आपके धर्मशास्त्रोंके कथनानुसार मानव जन्म दुर्लभ होता तो भारतवासी इस रत्नका बहिष्कार क्यों करते। आते हुये मनुष्य शरीरका स्वागत न कर वे यह क्यों कहते कि अब आप मत आइये। यह अफवाहमात्र नहीं है। मैंने अपनी आँखोंसे देखा है। मनुष्य अनेक वैज्ञानिक उपायों द्वारा इस दुर्लभ मानुष देहको आनेसे रोक रहा है। अब आप ही बतलाइये किसकी बात सही मानी जाय? मानव जन्म दुर्लभ है या सुलभ है?'

विष्णु भगवान ने कहा—"नारद मुनि, शंका समाधान के लिए आपको पुनः भूलोक पर भारत देश में जाना होगा।'

भगवान की आज्ञा से नारद जी ने भूलोक के लिये प्रस्थान किया।

*　　*　　*

ब्राह्मण के वेश में नारदजी, इधर-उधर भटक रहे थे। कोई भी विद्वान, वैज्ञानिक एवं पंडित नहीं मिला जो उनकी शंका का निवारण करे। दिल्ली में एक डाक्टर का बहुत नाम फैला हुआ था। लोगों का कहना था कि डाक्टर समाजसेवी और विज्ञानवेत्ता भी है। नारदजी ने सोचा, यह डाक्टर सम्भव शंका समाधान कर दे। नारदजी ने डाक्टर से अपनी शंका निवेदन करते हुए कहा—'डाक्टर साहब मानव जन्म दुर्लभ है या सुलभ।'

डाक्टर ने कहा—'इसी गुत्थी को सुलझाने में एक माह से परीशान हूँ। आज तक कोई हल नहीं निकल सका। यदि यही हालत रही तो मैं शीघ्र ही पागल हो जाऊँगा।'

'तब हम दोनों समान रोगसे पीड़ित हैं?'

'नहीं, मेरी स्थिति भिन्न है। आपको केवल शंका है और मुझे पीड़ा है दुःख है चिन्ता है, पछतावा है।' कहते कहते डाक्टर विक्षिप्त हो उठा और कुछ रुककर पुनः बोला—'मैं जानता हूँ आप मेरी बातों पर तब तक यकीन नहीं करेंगे, जब तक मैं अपने जख्म को उघाड़ कर न दिखलाऊँ।'

और डाक्टर ने आपबीती कहना शुरू कर दिया—

'हम दो भाई हैं। बड़े भाई अध्यापक हैं। और मैं आपके सामने हूँ। हम दोनों में बहुत अन्तर है। मैं भौतिकवादी हूं और वे अध्यात्मवादी हैं। मैं प्राचीन परम्पराओं और धर्मशास्त्रों से घृणा करता हूँ और वे उसमें आस्था रखते हैं। दोनों के दो मार्ग हैं। मुझे अपनी शक्ति, विज्ञान और भौतिक सुख के साधनों पर अहंकार था। विज्ञान की शक्ति के आगे मैं भगवान को भी व्यर्थ समझता था।

चार साल पहले की बात है, बड़े भाई को पाँच सन्तान थीं और मेरे दो। मैं अपने को बहुत भाग्यशाली और सुखी समझता था। वह इस मानेमें कि देशकी खाद्य समस्याको हल करनेमें मैंने अमूल्य सहयोग दिया था। देशको बढ़ती हुई आबादीको कम करनेके लिये

मैं सन्तति निरोधको बहुत आवश्यक समझता था। मेरे दो सुन्दर होनहार पुत्र थे। अब आगे सन्तानकी आवश्यकता नहीं थी। अतः मैंने अपना और अपनी पत्नीका आपरेशन करवा लिया। ऐसा करनेसे सुखभोग निरापद हो गया। मैंने अपने बड़े भाई साहबको भी यही राय दी कि वे भी आपरेशन करा लें अथवा कृत्रिम साधनोंसे सन्तति निरोध करें। उन्होंने इसे अव्यवहारिक बताकर बिल्कुल इन्कार कर दिया। मेरे सिर पर विज्ञान और पाश्चात्य सभ्यताका अनुकरणजन्य भूत सवार था। मैं भाई साहबके पीछे पड़ गया। हम दोनोंकी घंटों बहस होने लगी। एक दिन मैंने उन्हें मजबूर करते हुये कहा—

'आप गरीबीको निमन्त्रण दे रहे हैं। अधिक बच्चे होना निर्धनताका लक्षण है। दूसरे आपकी आमदनी भी सीमित है। यदि इसी प्रकार बच्चे पैदा होते रहे तो उन सबकी समुचित देखभाल शिक्षा-दीक्षा नहीं हो सकेगी। हमारी सरकार मूर्ख नहीं है जो करोड़ों रुपये सन्तति निरोध पर खर्च कर रही है। अपने लिये न सही लेकिन अपने बच्चोंके उज्वल भविष्यके लिये आपको आपरेशन करा लेना चाहिये। मुझे देखिये मैंने खुद करवाया है इससे कोई हानि नहीं है। आप अपनी स्वीकृति दें तो मैं इसके लिये व्यवस्था करूँ।'

भाई साहबने गम्भीर होकर कुछ सोचते हुए कहा—'देशकी आर्थिक स्थितिको देखते हुये सन्तति निग्रहकी आवश्यकता महसूस करता हूँ।'

तब फिर मैं शीघ्र ही आपरेशनकी व्यवस्था करवाता हूं।' मैंने विजय-गर्वसे कहा।

'नहीं, मैं तुम्हारी निरोध प्रणालीको गलत, अव्यवहारिक और देशको पतनकी ओर ले जाने वाली समझता हूँ। आपरेशन अनावश्यक है। मैं आजसे वानप्रस्थ आश्रममें प्रवेश करता हूँ। शुद्ध और सूक्ष्म आहार विहार के द्वारा वासनासे दूर रहकर संयम और ब्रह्मचर्यका पालन करूँगा।'

मैंने हँसकर उपेक्षासे कहा—'आजके युगमें ब्रह्मचर्य खयाली पुलाव है। और फिर शारीरिक सुखका त्यागकर ब्रह्मचारी रहना यह सोसायटीके विरुद्ध है। इसमें आप सफल नहीं हो सकते।'

भाई साहबने दृढ़तापूर्वक कहा—'सफलता असफलता भगवानकी कृपा और मेरे कर्मके अधीन है। मैंने अपना मार्ग निश्चय कर लिया।'

उन दिनों मैं अपनेको सही मार्ग पर मानकर भाई साहबकी खिल्ली उड़ाता था। परन्तु आज विक्षिप्त और दुःखी हूँ। अब मुझे इस जन्ममें भगवान भी सुखी नहीं कर सकता है। डाक्टर साहबकी आँखोंसे आँसू निकल आये।

नारदजीने आतुरतासे पूछा—'अन्तमें हुआ क्या? आप रो क्यों रहें हैं?'

'अब तो जीवन भर रोना है। डाक्टरने आँसू पोंछते हुये कहा—'अभी पिछले महीने की बात है। दिल्लीमें भयंकर चेचकका प्रकोप

था। मेरे दोनों पुत्र एक सप्ताहके अन्दर मेरी आँखोंके सामने ही कालके ग्रास बन गये। राजधानीके बड़े-बड़े डाक्टर देखते रह गये, सारा विज्ञान और दवाखाना धरा रह गया। मेरे बच्चोंको कोई नहीं बचा सका।' डाक्टर फिर फफक कर रो पड़े और सिसकियाँ लेते हुये बोले—'उसी दिनसे मेरी पत्नी पागल हो गई है। अब उसके भी बचनेकी कोई आशा नहीं है। वह जहाँ भी दवाकी शीशी देखती है उसे तुरन्त पटक कर फोड़ देती है, काँचके टुकड़ेसे अपने शरीरमें घाव कर लेती है और खूनको मुखपर मलकर चिल्लाती है—इसी शीशी में मेरा बच्चा है...हा-हा-हा।'

नारदजी भी डाक्टरके दुःखसे द्रवित हो गये। बोले—'डाक्टर साहब शोक त्यागिये। जिसने लिया है वही देगा भी। अभी आपकी उम्र ही क्या है। भगवान चाहेगा तो आपको और भी सन्तान होगी। पत्नीको समझाइये उसकी चिकित्सा कीजिये।'

'भगवान अब नहीं चाहेगा, पण्डितजी' डाक्टर कराहते हुये बोले—'शायद आप भूल गये, अभी मैंने कहा न था कि हम दोनोंने सन्तति निरोधके नशेमें पड़कर आपरेशन करा लिया है। अब नई सन्तानकी आशा बालूसे तेल निकालनेके समान है। यही तो मैं अपनी मूर्खता और अहंकार पर खीझ रहा हूँ। यदि मैंने अपने भाई साहबका रास्ता अपनाया होता तो आज यह दिन नहीं देखना पड़ता। इस महामारीकी भेंट भाई साहबकी भी तीन सन्तानें चढ़ गईं। फिर भी उनके बुढ़ापेकी लाठी दो पुत्र बचे हुये हैं। यदि वे हमारी स्थितिमें होते तो भी उन्हें कोई दुःख नहीं था, क्योंकि उन्होंने आपरेशन नहीं कराया है। अपना संयम तोड़कर वे जब चाहें सन्तान पैदा कर सकते हैं। पर मुझे तो सिवा जहर खा लेनेके और कोई मार्ग नहीं है। मैं हार गया, भाई साहब जीत गये। भौतिक अहंकारने मुझे अन्धा कर दिया था। मैं मानव जन्मको सुलभ और अपने वशकी बात समझता था, पर अब मालूम हो गया कि मानव जन्म कितना दुर्लभ है।'

'लेकिन यह तो मेरी शंकाका समाधान नहीं हुआ।' इससे तो मेरी गुत्थी और उलझ गई। आपकी आपबीतीसे यह जरूर सिद्ध हो जाता है कि आजकलका सन्तान निरोधका ढंग ठीक नहीं है।'

डाक्टर साहबने कहा—'महाराज क्षमा करें। मेरी बुद्धि इस समय विक्षिप्त है। मैं हिताहितका ज्ञान खो बैठा हूँ। पर इतना अवश्य कहूँगा कि आपकी शंकाका निवारण बुद्धिवादी वैज्ञानिक या किताबी विद्वान नहीं कर सकते हैं। अच्छा हो किसी सन्त महात्माकी शरणमें चला जाय।'

डाक्टरकी राय नारदजीको पसन्द आ गई। दोनों व्यक्ति पास ही की पहाड़ी पर रहने वाले एक सन्तकी कुटियापर गये। महात्माजी के पास दो चार और प्रेमी भक्त बैठे हुये थे। महात्माका प्रवचन चल रहा था—

'मानव जन्म बड़ा दुर्लभ है। दुर्लभ इसलिये कहा गया है कि चौरासी योनि भोगने

के बाद यह मानव जन्म आत्मज्ञान प्राप्त कर ब्रह्म साक्षात्कारके लिये प्राप्त होता है। जब मानव अपना कर्तव्य नहीं करता है तब फिर उसे चौरासीके चक्करमें भटकना पड़ता है। मानव जन्मका एकमात्र उद्देश्य आत्मज्ञान ही होना चाहिये। पर आजकल हमारे देशमें इसका बिल्कुल उल्टा देखा जाता है। आजकल मानवका उद्देश्य भोग है। वह केवल खाने-पीने, मौज-मस्तीको ही अपने जीवनका ध्येय समझता है। इस प्रकार मानव शरीरका दो ध्येय निर्णय होता है। एक भोग और दूसरा योग। पहले जमानेमें मानव समाजका योग द्वारा आत्म साक्षात्कार ही ध्येय था। उस समय भोगका त्याग और आत्मशक्तिका संग्रह किया जाता था। अपरिग्रहके कारण उस कालमें अन्न-धनकी कमी नहीं थी। सभी सुखी और सन्तुष्ट थे। मानव जन्मका आदर-सत्कार कर खुशी मनायी जाती थी। प्रत्येक माता सौ तपस्वी, कर्मयोगी और वीर पुत्रोंकी कामना करती थी। उन दिनों मानव जन्म दुर्लभ समझा जाता था। शास्त्रोंमें भी इसका उल्लेख है कि बड़े भाग्यसे मानव जन्म मिला है। जैसे भी हो ब्रह्मज्ञान प्राप्त कर लिया जाय अन्यथा असफल होने पर चौरासी योनियोंका भोग तो भोगना ही है। पर आजकल मानव जन्म सुलभ हो गया है। अब मातायें चाहती हैं कि हमें सन्तान न हों। पैदा होते हुये मानवसे सरकार कहती है, समाज कहता है—आप यहाँ मत आइये अब जगह नहीं है। आपके भोगनेके लिये भोग्य वस्तुका अभाव है। ऐसा क्यों है? इसलिये कि आजकल मानव जन्मका ध्येय केवल भोग है। जो ध्येय अन्य चौरासी योनियोंका है वही मनुष्यका भी है। पशु खाने-कमाने और मरनेके लिये आता है और मनुष्य भी खाने कमाने और मरनेके लिये पैदा होता है। जब होटल और भोजमें खानेवालोंकी संख्या भोजन सामग्रीसे अधिक हो जाती है तब कहा जाता है कि अब आप लोग मत आइये, बस आना बन्द। यही कार्य आज हमारी सरकार कर रही है। खावो-पीवो मौज- उड़ाओ वाले लोग जब पैदा होते जा रहे हैं तब सरकार कहती है कि सन्तति निरोध द्वारा इन भोगियोंका आना बन्द करो। ये यहाँ आकर क्या करेंगे खाने और रहनेका स्थान भर गया है। कथा कीर्तन और सत्संग सभामें लोग आत्मज्ञान और योग के लिये आते हैं वहाँ जितने भी आवें कोई रोक नहीं लगती है। सबका स्वागत सत्कार होता है। यदि मानव जन्म आत्मज्ञानके उद्देश्यसे हो तो उसके लिये रोक कहीं नहीं है। और न ही उसके लिये सन्तति निग्रहकी आवश्यकता है।

अब मनुष्यको अपना ध्येय बदलना चाहिये। मनुष्यको भोगी नहीं योगी बनना चाहिये। तभी धर्म शास्त्र की मर्यादा रहेगी। और यह दुर्लभ मानव जन्म सफल होगा।

महात्माका प्रवचन समाप्त हुआ। सभी अपने घरकी ओर प्रस्थान कर गये। पर नारदजी

(शेष पृष्ठ ५१ पर देखिये)

सद्गुरु संदेश

तत्व का घृत चित दिया, भर तुरिया बाती डार।
ज्ञान अग्नि से लेस दे, शारदाराम परम उजियार ॥१॥
अलख कहत चलहु नर, आखिर जाय शरीर।
शारदाराम सोइ नर उत्तम, नाम बिना नर कूर ॥२॥
अलख वन्दना पूर भये, पूरण चन्द्र देखाय।
आत्म उदधि उमड़ि आये, जीव को लेय मिलाय ॥३॥
अलख वन्दना अजपा-जाप है, जपे बिना जपाये।
सुरति सुमति जो जगाये, शारदाराम यों पाये ॥४॥
अच्युत ऐसो समरथ है, दिव्य नयन कर पेख।
बिनु पगु चलै कर बिन करै, नयन बिना सब देख ॥५॥
तन बिन परस सुनै कान बिन, बास घ्राण बिन लेत।
आनन रहित विविध रस भोग, वाणी बिन कहत सचेत ॥६॥
अस अच्युत की करनी अद्भुत, नमते शारदा महेश।
सो महिमा किमि नर कहै, अच्युत वन्दना करूँ हमेश ॥७॥
सोइ जब उर प्रकटे अच्युत, बन्दना वन्दनको भया सुचेत।
नर समाज नर तन पायके, शारदाराम अच्युत सो हेत ॥८॥
अस अच्युत की वन्दना, अलौकिक करणो जान।
सोई उर अन्दर बस रहा, राई भर परमान ॥९॥
गुरु पूरे से वह दरसै, जो है गुरु का लाल।
शारदाराम सत्य कोऊ रमे, अच्युत ब्रह्म में ख्याल ॥१०॥
अच्युत वन्दना मोक्ष है, सुधरै लोक परलोक।
मोक्ष भये पुनि ना लौटे, यह है वेद का टेक ॥११॥
ब्रह्म वन्दना में अनन्त गुण, पारस जड़ निज धातु।
ताके पटतर क्यों तुलै, यह निश्चय मन आतु ॥१२॥
ब्रह्म वन्दना सब करै, सुर असुर नर नाग जहान।
इच्छित सब फल पावहीं, जिसका जैसा मन मान ॥१३॥
ब्रह्म मध्य सब उत्पत्ति है, चन्द्र भानु के ग्रास।
भानु प्रकाशै सब जीव को, चन्द्र पोसत है तास ॥१४॥
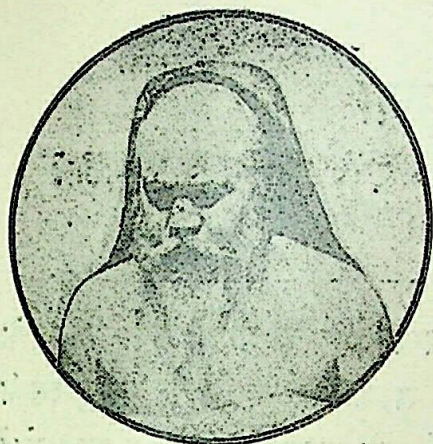
शारदाराम शब्दावली

शारदारामीय भागवतकिरणके नवम प्रकरणसे उधृत

आई होली की बहार रे संतों खेलो मन मार के।
शुभ अशुभ दोऊ खेल बना है, सञ्चो शुभ को सम्हार के।
खेल खेलावत खेलन हारा, आपे किया नाना रूप विस्तार के।
गगन महलिया के मध में बैठा, गुरुमुख जन देखु निहार के।
बैठ एकान्त सुरत संग सम्हरो, झलक रहा सर्व झलकार के।
शारदा राम ॐसंग होरी, आनन्द रंग रंगिला अनन्त अपार के।

*   *   *   *

होली खेलन में चोलो फट जातु रे।
चोलो मिली जर कर्मन से, छल कपट संग विगरातु रे।
मोर तोर झगर ममता में, मिटा चढ़ा रंग पुनि पछतात रे।
अजब भयानक संसार होली, जैसे स्वप्न रज्जु साँप रे।
स्वप्न भयानक भया दुखदाई, तैसे संसार निष्फल असार रे।
शारदाराम होरी हरी मिलो है, जो कोऊ छान विन करै संचार रे।

*   *   *   *

होली मची गगन अटरिया, झलरिया नित बाज रही।
दसवाँ द्वार में रंग भरा है, लोक लोकान्त में जगमगाये वाही।
इंगला पिंगला सुखमन छडके, सुरत संग जगमगात साही।
दल सहस्र कमल खिला है, अद्भुत सेजरिया साज रही।
पियासंग होली बुद्धि गोरी खेलत, जो नवधा सिंगार सजाई रही।
नव द्वार से बोलत बोलावत, दसवाँ से प्रकाश प्रकाश मही।
शारदाराम होलो सच खेली, तत्वएकता ए एक सवाँर रही।

नवरात्र की शक्ति पूजा

लेखक—अरुण कुमार शर्मा एम० ए० (ट्रवल) एम० ओ० एल० बी० एड० काव्यतीर्थ

माँ दुर्गाने साहित्य, कला, अध्यात्म और दर्शन आदि सभी क्षेत्रोंमें समान रूपसे प्रतिष्ठा प्राप्त की है। हमारे देशके दक्षिण वासी कवियों ने दुर्गाकी परिकल्पनाके साथ उनका भावात्मक चित्र भी खींचा है। दुर्गाके पूजाका विधान-परम्परा आदि प्रमाणिक रूप प्राप्त न होनेके फलस्वरूप इसे अनादि कहा गया है। हमारे देशके अतिरिक्त जावा, सुमात्रा, हिन्द चीन, कम्बोडिया, और हिन्देशियामें भी शक्ति पूजा भिन्न-भिन्न रूप में प्रचलित है।

परब्रह्मकी तीन शक्तियाँ महासरस्वती, महालक्ष्मी, और महाकालीके आधार पर प्रधान ९ विशिष्ट रूप हमारे सामने हैं।

यदि इन विशिष्ट रूपको व्यापक रूप में देखा जाय तो १०८ भेद और हो जाते हैं। दुर्गाकी आत्मिक शक्तिका प्रादुर्भाव ज्योतिर्लिङ्ग शिवसे हुआ है। इसे शिवमयी शक्ति भी कहते हैं। इस शक्तिका भी कई प्रकार और भेद हैं। जिनमें मुख्य हैं—ब्राह्मी, कुमारी, ज्ञाना, और आदि देवी! अतः आदि देवीको सर्वशास्त्रमयी तपस्विनी और आदि परा शक्ति कहते हैं।

देवी भागवतमें प्रायः स्थल विशेष पर त्रयशक्तियोंके लिये 'जगदम्बा' या 'अम्बा' शब्दका प्रयोग किया गया है। कुमारी सरस्वती के लिये 'अम्बा' शब्दका प्रयोग सर्व साधारणके लिए जरा खटकनेकी बात है। परन्तु इसकी पृष्ट भूमिमें क्या रहस्य है? उससे आज कोई परिचित नहीं। जैसे एक बच्चेको अपने माता पिताको जानना पड़ता है और उन्हें जानकर उनके साथ श्रद्धाजनक व्यवहार करने पर ही वह पैत्रिक सम्पत्तिका अधिकारी बनता है। ठीक उसी प्रकार आध्यात्मिक रिक्थ भी जगदम्बा सरस्वती, जगत् पिता ब्रह्मा और भगवान शिवसे उन्हीं आत्माओंको प्राप्त हो सकती है जो उनके साथ निष्कपट सम्बन्ध स्थापित कर अपनी आत्मीयताका परिचय दे सकें। इसी सम्बन्धको 'सत्ययोग' कहते हैं। मार्कण्डेय पुराणके अनुसार उक्त त्रय महाशक्ति के अलावा 'महामाया' नामक एक और शक्ति का वर्णन मिलता है। महामाया, मानवको चेतना बुद्धि और मनको उदात्त बना कर उसे ब्रह्मज्ञानकी ओर ले जाती हैं। इस रूपमें उसे किसी वाहनकी आवश्यकता नहीं होती। यह मानवके सात्विक रूपका संचालन करती हैं। महाकालीके रूपमें वह मानवके पाशविक वृत्तियों का दमन करके उसके बल, कामनाओंका तथा शक्तिका संचालन करती हैं। सिंह पाशविक शक्तिका प्रतीक है—मानवके पाशविक शक्ति

की वृत्तिको वशमें करके उसे उदात्त शौर्यकी ओर ले जानेके कारण ही दुर्गाको सिंह वाहिनी कहा गया है। भैंसा पशुका सबसे बलवाला, मगर निर्बुद्धि तथा हठीला रूप है। जब मानव प्रकृति आसुरी यानी तामसी रूप धारण करने लगती है तो आदि शक्तिका महा काली रूप विश्व कल्याणके लिए महिषासुरका नाश करके मानवकी पुनः उदात्त शौर्य और विक्रमको उद्यत करता है। इसीलिये दुर्गा जगदम्बा कहलाती हैं। तीसरे रूपमें महालक्ष्मी सौन्दर्य, ऐश्वर्य तथा कलाकी अधिष्ठात्री बनकर मानव के निःश्रेयसकी सिद्धि प्रदान करती हैं। ऐश्वर्य और सौन्दर्य यदि किसी मूर्ख व्यक्तिके हाथ आ जाय तो वह कहाँ तक अनिष्टकारी हो सकता है--यह किसीको बतलानेकी आवश्यकता नहीं। अज्ञानका सबसे बड़ा प्रतीक 'उल्लू' है जो प्रकाशका उपयोग नहीं करना चाहता। उलूक वृत्तिके व्यक्तियोंके हाथों सौन्दर्य तथा ऐश्वर्यकी दुर्दशा न हो—ऐसी व्यवस्थाके लिए महालक्ष्मी उलूक वाहिनी हैं। लक्ष्मीको कमलालया, कमल दल विहारिणी कहा गया है—गज इनका सहयोगी है। इन सबका रहस्य स्पष्ट है—वह यह कि जलका उपयोग करने पर भी कमल उससे निर्लिप्त रहता है—उसी प्रकार सौन्दर्य ऐश्वर्य तथा धनका उचित उपयोग करनेके पश्चात् उसमें लिप्त न होना ही उनकी सच्ची उपासना है। कमल तथा गज क्रमशः ऐश्वर्य और सौन्दर्यके लाक्षणिक चिह्न हैं। चौथे महासरस्वतीके रूपमें शारीरिक बुद्धिके यान्त्रिक उपयोगकी अधिष्ठात्री बनकर आदि शक्ति अपना काम करती हैं।

विद्या बुद्धिके क्रियात्मक उपयोग द्वारा जनकल्याण करना—तथा उन्हें निष्कलंक, विवेकपूर्ण तथा लय, ताल, व मूर्छनाका एक स्वरमें उपयोग ही मानव कल्याण कर सकता है---पापमय एवं विशृङ्खल रूप नहीं। इसलिए महासरस्वतीका वाहन नीर-क्षीर विवेकी हंस है। और वीणाकी स्वर लहरियोंसे वे जगत्को एक लयमें बाँधती हैं। ऐसी अखिल जगत्की जगन्माता भगवती दुर्गाका आराधन भारतमें सदा-सदासे होता आया है और भविष्यमें हमेशा होता रहेगा। 'कलौ चण्डी विनायकौ' के अनुसार स्पष्ट है कि जगदम्बाका पूजन, स्तवन, ध्यान और मनन कलियुगके अन्धतम प्रभावको नाश कर मनोरथ पूर्ण करने वाला, ऐश्वर्य, राज्य, धन, पुत्र विद्या और लौकिक समस्त भोगोंको प्रदान करनेवाला कहा गया है।

'मानव जीवनकी सुन्दरता'

(ले०—जयकान्त झा, हरिश्चन्द्र महाविद्यालय, वाराणसी)

o

हम एक सुन्दर जीवन चाहते हैं। हमारी आकांक्षा होती है कि हमें सुन्दर पुत्र, सुन्दर स्त्री अथवा सुन्दर पति मिले। प्रत्येक व्यक्ति सुन्दरताकी खोजमें व्यग्र है। वास्तवमें सुन्दरता का अर्थ सुन्दर आकृति नहीं है, प्रत्युत सुन्दर जीवन है। सुन्दरताकी सबसे बड़ी पहचान यह है कि यदि हमें सुन्दर पुत्र मिले तो वह संयमी और आज्ञाकारी हो, सुन्दर पत्नी मिले तो स्नेह पूर्वक हमारी सेवा करे, इसी प्रकार सुन्दर पतिसे पत्नी सुन्दर व्यवहारकी आशा करती है। सुन्दरताके इच्छुक सभी हैं, किन्तु हमें पग-पग पर इस दिशामें निराश होना पड़ता है। हम दूसरोंसे जैसे व्यवहारकी आशा रखते हैं, स्वयं उसी प्रकारका व्यवहार दूसरोंके साथ नहीं करते। यही कारण है कि हमें इस विषयमें सफलता प्राप्त नहीं होती। प्रत्येक व्यक्तिका यह उद्देश्य होना चाहिये कि दूसरे सुन्दर बनें या न बनें किन्तु वह अपनेको सबके लिए सुन्दर बनानेका पूर्ण प्रयत्न करे। सुन्दर बने रहनेमें ही जीवनकी सार्थकता है। सुन्दर जीवन में ही मनुष्य पुण्य अर्जित करता है और असुन्दर जीवनमें ही पापोंका संचय करता है। अपने स्वार्थके लिए किसीका अहित करना असुन्दरता है एवं स्वयं कष्ट सहकर परोपकार करना ही सुन्दरता है। यदि हम अपने बन्धु-बान्धवोंके मध्यमें असुन्दरताका परिचय देते हैं, अपने सुख-सम्मानकी पूर्तिमें व्यग्र रहते हैं तो असुन्दरता-पापमय जीवनका संचय करते हैं। चाहे कोई कितना ही असुन्दर क्यों न हो, हमें बराबर उससे लाभ उठाते चले जाना चाहिये। समाजके लोगोंको अभिमानी, अन्यायी तथा अज्ञानी कहकर कुछ भी हाथ नहीं लग सकता, बल्कि उन्हींके बीच सहन-शील और नम्र बनकर रहनेसे जीवनकी निर्मलता एवं सच्ची सुन्दरता प्राप्त होती है। इस प्रकारके संयमका पालन किसी स्वार्थी अथवा पद-लोलुपके वशकी बात नहीं है, यह तो उसके लिए सम्भव है जो संसारके भोगोंको तृणवत त्यागकर तृप्त हो चुका है और संयमकी दिशामें नित्य प्रति अग्रसर हो रहा है। यह उसीके लिये सम्भव है जो मानवताका विकास करना चाहता है एवं शान्ति, सन्तोष तथा भगवत्प्राप्तिके लिये शक्ति संचय करना चाहता है। अभिमानियों एवं नारकियोंके बीच रहकर ही मनुष्य विनम्र बन सकता है। लोभियोंके मध्यमें रहकर ही संतोष लाभका अभ्यास सफल

हो सकता है। यदि विनम्र और संतोषी बनने में कष्ट होता है तो निस्सन्देह जीवनमें सद्गुणों का सौन्दर्य नहीं उतर पाया है। अपने दोषोंको पहचानना ही सद्गुणके सुन्दर पथ पर अग्रसर होना है।

निर्धन से निर्धन व्यक्ति भी अपनी उन्नति करने एवं अपने जीवनको सुन्दर बनाने में पूर्ण स्वतन्त्र हैं। वह एक सम्राटसे भी अधिक मस्त जीवन व्यतीत कर सकता है। 'सर्वं परवशं दुःखम्' के अनुसार जब तक किसी व्यक्ति या वस्तुका आश्रय लिया जाता है तब तक वास्तविक शान्तिकी अनुभूति नहीं होती। व्यक्ति एवं वस्तुकी दासतामें हमें जीवन पर्यन्त कितना कष्ट उठाना पड़ता है, यह किसीसे छिपा नहीं है।

हमें व्यावहारिक क्षेत्रसे समस्त दोषोंको मिटाकर मानवताकी जागृति करनी है। क्रुद्धोंके बीच क्षमाशील बनकर एवं दोषियोंके बीच सद्गुणोंका विकास करके जीवनकी सार्थकता प्राप्त करनी है। मानवतासे ही दिव्यताकी प्राप्ति होगी। मानव जीवनका यही परम उद्देश्य है और यही जीवनकी सुन्दरता है।

(शेष पृष्ठ ४५ से आगे)

अपने स्थान पर बैठे रहे। सबके जानेके बाद महात्माजीने पूछा—"कहिये नारदजी आपकी शंका दूर हुई या नहीं?"

नारदजीने दृष्टि उठाकर देखा—सामने महात्माके स्थान पर साक्षात विष्णु भगवान मुस्कुरा रहे थे।

नारदजी प्रसन्न हो चरण वन्दना करते हुये बोले—

"भगवन जब आपही को शंका समाधान करना था तो फिर इतना कष्ट क्यों उठाया आपने। क्षीर सागरमें ही सेवककी इच्छा पूरी हो सकती थी।"

प्रसन्नमुख नारायणने कहा—"लोक सम्बन्धी शंकाका समाधान लोक मर्यादाके अन्दर ही हो सकता है। यही सृष्टिका नियम है। जिस प्रकार न्यायाधीशका कार्य करनेके लिए न्यायाधीशके अनुरूप वस्त्र धारण किया जाता है और पुलिसके कार्यके लिए पुलिस का वस्त्र पहनना पड़ता है। उसी प्रकार मुझे भी लोक व्यवस्थाके लिए समय-समय पर विभिन्न शरीर रूपी वस्त्रोंको पहनना पड़ता है।" इतना कहकर भगवान अन्तर्ध्यान हो गये।

नारायण नारायण।

[प्रेषक—श्री वाचस्पति चतुर्वेदी 'वैद्य' वरहरवा (विहार)]

सन्त श्री हरिहरानन्द स्वामी

कवित्त

दिव्य भाल है विशाल जटा जूट शीश सोहे,
श्मश्रु मुच्छ गुच्छ केश कुञ्ज सम पाये हैं।
नील नयनारविन्द श्वेत तारिका लसी ज्यों,
सूर्य चन्द्र के प्रकाश से अपूर्व भाये हैं॥
भसम लपेटे अंग वस्त्र गेरुआ विराजे,
विन्ध्य वासिनी निकेत चेतना जगाये हैं।
ऐसी दिव्य तपोमूर्ति सामने 'द्विजेन्द्र' देख,
हरिहरानन्द स्वामी सन्त हरषाये हैं॥१॥

आये हैं जो देहधर दुर्लभ यतीन्द्र वे हैं,
विप्रवंश जन्म पाये बंगाली वखानिये।
विनयी विद्वान हो के तपो तेज युक्त जो हैं,
लोक वेद पटुता में विज्ञानी विजानिये॥
ज्ञानियों में त्यागशील धर्म शील साधुओं में,
दुर्लभ अतीव दीन दैन्यहर मानिये।
आज पुण्य, प्राण्य दिव्य मानव 'द्विजेन्द्र' कहैं,
हरिहरानन्द स्वामी सन्तवर जानिये॥२॥

सद्गुरु बाबाशारदारामजी उदासीन मुनिका काशी आगमन ?

ज्ञात हुआ है कि श्रीतीर्थ रामटेकड़ी पूनाके सिद्ध सन्तशिरोमणि तथा "परमानन्द संदेश" के संस्थापक परमपूज्य योगीराज सद्गुरु बाबा-शारदारामजी काशी पधार रहे हैं। भाग्यवान भक्तोंके लिए दर्शन लाभका यह अपूर्व संयोग है। सम्भवतः अप्रैल १९६१ के प्रथम सप्ताह अथवा मार्चके अन्तिम सप्ताहमें बाबाजी काशी पधारेंगे। बाबाजी अप्रैलके अन्त तक उदासीन पुरी कप्तानगंज आजमगढ़में स्थान करेंगे, ऐसी सम्भावना है। काशी आनेका अभी तिथि निश्चित नहीं हुई है। पर उदासीन पुरीमें चैत्र रामनवमीको बाबाजीका दर्शन निश्चय है। ज्ञातव्य है कि उदासीनपुरीमें बाबाजीकी कृपा से रामनवमीका बहुत बड़ा मेला लगता है।

काशीमें दर्शनके इच्छुक सज्जन परमानन्द संदेशके कार्यालयसे सम्पर्क स्थापित कर निश्चित तिथिकी सूचना प्राप्त कर सकते हैं।

पूनामें मूर्ति स्थापना

कार्टर गेट चौक, पूनामें नव-निर्मित 'तीरथ-भवन' में श्री १०८ उदासीन मुनि बाबा शारदारामजी महाराजकी संगमर्मरकी बनी हुई पूर्णाकार मूर्ति जो भारतके सुप्रसिद्ध शिल्पकार श्री करमरकर की श्रेष्ठतम कलाकृति है, की प्रस्थापना फाल्गुन शुक्ल १२, संवत् २०१७ तदनुसार सोमवार दिनांक २७ फरवरी १९६१ को करनेकी आयोजना श्री तीरथ सिंह एवं श्रीमती सुमित्रा देवी पूना निवासीकी ओर से की गई है।

मूर्तिका अनावरण समारम्भ पूनाके महापौर माननीय श्री रोहिदासजी किराडके कर-कमलों द्वारा सम्पन्न होना निश्चित हुआ है। सद्गुरु बाबा शारदारामजी महाराज भी इस मंगलमय अवसरपर अपनी उपस्थिति द्वारा जनताको कृतार्थ करेंगे। ज्ञातव्य है कि आप अत्यंत उच्च कोटिके विरक्त उदासीन संत हैं। संसारको त्यागकर जबसे आपने सन्यास लिया उसी क्षणसे आज तक नानाप्रकारकी कष्टपूर्ण यौगिक एवं आध्यात्मिक साधनाओं तथा कठिन तपस्याओंमें अहर्निश व्यस्त रहते हैं। आपकी दिनचर्या, वेषभूषा, तेजस्वी मुखमुद्रा एवं त्यागमय जीवनके अवलोकनसे प्राचीन ऋषि महर्षियोंकी स्मृति मनःचक्षुके समक्ष साकार बन जाती है। आपके अनेकों शिष्य-सेवकों द्वारा निर्मित उनकी अगाध श्रद्धाके प्रतीक मंदिर, धर्मशालायें, अतिथिगृह, कुँआ, सरोवर तथा गौ शालायें आदि आपके जन्म स्थान उदासीनपुरी, आजमगढ़ (उत्तर प्रदेश)

तथा तपोभूमि रामटेकड़ी, पूनामें विद्यमान हैं। जनताके कल्याणार्थ आपने कई पुस्तकोंकी रचनाकी है। जिनमेंसे 'श्री निर्गुण महारामायण' एवं 'श्री शारदारामीय भागवत किरण' नामक दो बृहदाकार ग्रंथरत्न विशेष रूपसें उल्लेखनीय हैं। बाबाजीके विस्तृत जीवन चरित्र हिंदी एवं गुरुमुखी भाषाओंमें प्रकाशित हो चुके हैं।

परमानन्द संदेश के ग्राहकों के लिये आवश्यक सूचना

१—जिन कृपालु ग्राहकों को परमानन्द संदेश न मिलता हो वे कृपाकर पत्र द्वारा शीघ्र सूचित करें और अपना पता साफ-साफ लिखनेका कष्ट करें।

२—जिन ग्राहकों को अंक १-२-३-४-५ में से यदि कोई अंक न मिला हो तो उसकी सूचना कार्यालय को २५ मार्च तक अवश्य भेज दें। वे अंक आपके पास पुनः भेजने की व्यवस्था की जायगी। २५ मार्च के बाद पिछले अंकोंके सम्बन्धमें आई हुई शिकायतों पर नियमतः विचार करनेमें हम असमर्थ हैं।

३—जिन ग्राहकोंको भूलसे अधिक या दो बार अंक मिल गये हों, वे कृपया नये ग्राहक बनाकर उन्हें दे देनेका कष्ट करें और शेष प्रतियोंके लिए कार्यालय को लिखनेका कष्ट करें।

समाचार पंजीयन (केन्द्रिय) कानून १९५६ के ८वें नियम के अन्तर्गत अपेक्षित 'परमानन्द संदेश' से सम्बन्धित विवरण

१—प्रकाशन का स्थान........शारदा प्रतिष्ठान सी० के० १५।५१ सुड़िया, वाराणसी,

२—प्रकाशन अवधि..............मासिक, मास के प्रथम सप्ताह में.

३—मुद्रक एवं प्रकाशकका नाम......भद्रसेन वैद्य

राष्ट्रीयता........................भारतीय

पता............................सी० २२।११ कबीरचौरा, थाना-चेतगंज वाराणसी

४—सम्पादक का नाम..............भद्रसेन वैद्य

राष्ट्रीयता........................भारतीय

पता............................सी० २२। १ कबीरचौरा वाराणसी

५—स्वत्वाधिकारियों का नाम पता...१—अजित मेहता ११ २। शिवाजी नगर पूना—५

२—भद्रसेन वैद्य सी० २२। १ कबीरचौरा वाराणसी,

मैं भद्रसेन वैद्य घोषित करता हूँ कि मेरी जानकारीमें विश्वासके अनुसार उपरोक्त विवरण सही है।

हस्ताक्षर—

ता०—२८—२—६१

भद्रसेन वैद्य

परमानन्द संदेशके नियम

उद्देश्य

परमानन्द संदेश विशुद्ध आध्यात्मिक-धार्मिक मासिक पत्र है। परमात्माके नामका गुणगान करते हुए धर्म, ज्ञान, भक्ति, वैराग्य एवं सदाचार समन्वित साहित्य द्वारा जनताका मनोमञ्जन तथा सन्त महात्माओंके परमानन्ददायक संदेशको घर-घर पहुँचाना इसका उद्देश्य है।

नियम

१—परमानन्द संदेशका नया वर्ष कार्तिक माससे प्रारम्भ होकर आश्विन मासमें समाप्त होता है। वर्षके किसी भी मासमें ग्राहक बनाये जा सकते हैं, पर ग्राहकोंको चालू वर्षके सम्पूर्ण अंक लेने होते हैं।

२—परमानन्द संदेशकी प्रत्येक वर्षगाँठपर एक विशेषांक ग्राहकोंको उसी मूल्यमें भेंट दिया जायगा।

३—परमानन्द संदेशके ग्राहक तीन प्रकारके बनाये जाते हैं। १—साधारण ग्राहक २—स्थायी ग्राहक ३—आजीवन ग्राहक।

साधारण ग्राहकोंको ५) वार्षिक शुल्क रहेगा।

स्थायी ग्राहकोंको २५) एक साथ शुल्क देनेपर ६ वर्षों तक 'परमानन्द संदेश' उनकी सेवामें भेजा जायगा।

जो सज्जन १५१) रुपये एक साथ शुल्क देंगे उन्हें आजीवन ग्राहक बना लिया जाता है। उनका नाम परिचय वर्षमें एक बार सादर प्रकाशित किया जाता है।

४—प्रत्येक ग्राहकोंको 'परमानन्द संदेश' बड़ी सावधानीके साथ भेजा है। यदि किसी कारणवश पत्र समयपर न मिले तो अपने पोस्ट आफिससे लिखा-पढ़ी कीजिये। उसके बाद यहाँ कार्यालयको १५ दिनके अन्दर सूचित करें।

५—अपना नाम व पता साफ-साफ लिखें। पता बदलना हो तो १५ दिन पहले सूचना देनी चाहिये।

६—वार्षिक शुल्क सदा मनीआर्डरसे भेजिए। वी० पी० मगानेसे खर्च ज्यादा पड़ता है।

७—मनीआर्डरके कूपनपर रुपया भेजनेका मतलब और अपना पूरा पता साफ-साफ अवश्य लिखिए।

८—'परमानन्द-संदेश' सम्बन्धी प्रत्येक पत्र व्यवहार प्रधान सम्पादकके नाम शारदा प्रतिष्ठानके पते पर करना चाहिये।

लेखकोंसे

९—लेख सदा स्वच्छ उपयोगी एवं विवाद रहित होने चाहिये।

१०—उद्देश्यके विपरीत कोई लेख स्वीकार नहीं किया जायगा।

११—लेखोंको घटाने-बढ़ाने और छापने न छापने का पूरा अधिकार सम्पादकको है।

१२—लेखोंमें प्रकाशित मतके लिये सम्पादक उत्तरदाता नहीं है।

१३—अमुद्रित लेख लौटाये नहीं जाते हैं। यदि आप वापस चाहें तो डाक टिकट साथमें अवश्य भेजिये।

१४—दो या तीन पेजसे अधिक लम्बे लेख न भेजें।

बाहरी विज्ञापन स्वीकार करनेका हमारा नियम नहीं है। अतः इससे होनेवाली क्षतिकी पूर्ति आपके सहयोग द्वारा ही सम्भव है।

ग्राहक बनिये और बनाइये

सन्तोंके आशीर्वाद और उनकी अमरवाणीसे मनका कलुष धुलकर भौतिक तथा आत्मिक सुख-समृद्धिके साथ परमानन्दका सद्मार्ग सुप्रकाशित होगा।

ग्राहक बननेके लिये आज्ञापत्र

प्रबन्धक—

"परमानन्द संदेश"

कार्यालय-शारदा प्रतिष्ठान सी. के. १५।५१ सुड़िया बुलानाला, वाराणसी—१

प्रिय महोदय,

मैं 'परमानन्द संदेश' का वार्षिक शुल्क ५) रुपये / छः वर्षोंके लिये २५) रुपये जीवनपर्यन्तके लिये १५१) रुपये मनीआर्डर द्वारा भेज रहा हूँ। कृपया मुझे साधारण स्थायी / आजीवन ग्राहक बनाकर निम्न पतेपर पत्र भेजनेका कष्ट करें।

नाम..

पूरा पता..

....

....

मनीआर्डर रसीद नं०..........

दिनांक.................... हस्ताक्षर....................

यहाँ से काटिये

नोट—१—जिस श्रेणीके ग्राहक बनना चाहें उसे छोड़कर शेषको काट देवें।

२—कम से कम १० ग्राहक बननेवाले सहयोगी सज्जनोंका नाम 'परमानन्द संदेश' में प्रकाशित होगा।

३—मनीआर्डर भेजनेकी रसीद फार्मके साथ भेजना चाहिए।

४—पता हिन्दीमें साफ-साफ लिखें।

भद्रसेन वैद्य द्वारा कल्पना प्रेस वाराणसी में मुद्रित और प्रकाशित।

सद्गुरु बाबा शारदारामजी उदासीन मुनि के जीवनकी

चित्रमय झाँकी

चित्र नं० ३
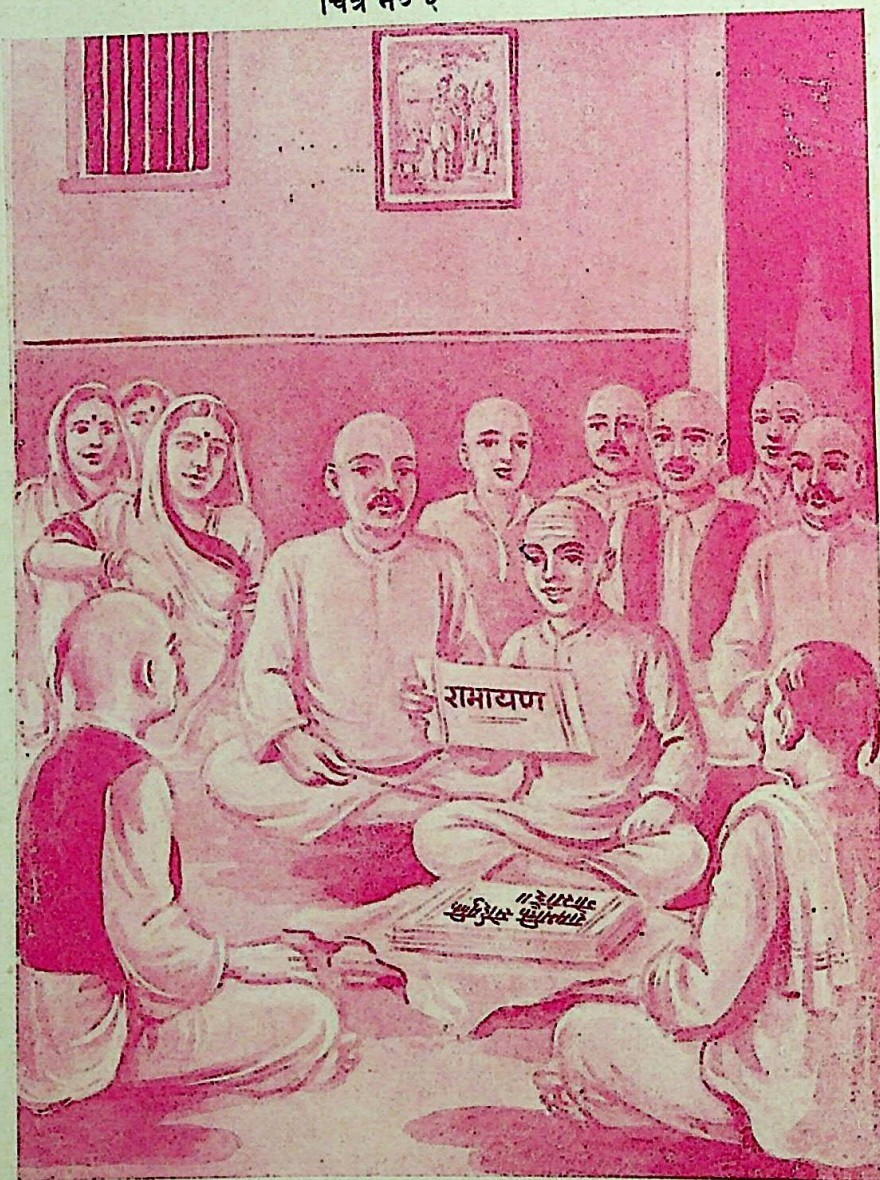
-- किशोर-लीला --

भौतिक विद्या से विरत, निशदिन रहे जलेश। आत्मज्ञान की ज्योति से, आलोकित हृद्देश ॥
बसें शारदा जीभ पर, राम बसें मन माहिं। रामचरित मानस पढ़त, मन में संशय नाहिं ॥
बाल 'जलेश' किशोर अब, हुआ ज्ञान सुविकास। लोग कहैं शचिपुत्र यह, अनपढ़ कालीदास ॥